विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि

महोत्सव के उपलक्ष्य में प्रथम खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

प्रथम खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता

परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य

प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदान

राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश

श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :

प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी

साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :

साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,

(एम ए पीएच डी)

साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,

(एम ए पीएच-डी)

सुकृत सहयोगी
वोरा खूबचंदभाई त्रिभोवनदास
मु. पो. थराद (उत्तर गुजरात)

प्राप्ति स्थान
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति
वीर सम्वत् : २५२५
राजेन्द्र सम्वत् : ९२
विक्रम सम्वत् : २०५५
ईस्वी सन् : १९९८
मूल्य : ७५-००
प्रतियाँ : २०००

अक्षरांकन
लेखित
१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण
सर्वोदय ओफसेट
प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?



विश्वपू[illegible]रणीय
[illegible]भु श्रीमद्विजय रा[illegible]सूरीश्वरजी म. [illegible]



न्त आचा

सेन सूरी



परम पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

साध्वी प्रियदर्शनाश्री
साध्वी सुदर्शनाश्री

2

शुभाकांक्षा !

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है । रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष ।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष । अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भो से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की । मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं । सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) ।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके । गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको ।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है । 'गागर में सागर है' । गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है । निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं ।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने ।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को । वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा ।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर
अहमदाबाद
दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

- *विजय जयन्तसेन सूरि*



मंगल कामना

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं । पुस्तकें सुंदर हैं । आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है । आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ । आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)



4

रस-पूर्ति

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है । जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर । आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है । निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है । वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है ।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं । वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है । क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है । स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता । श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं ।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है ।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं ।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती । अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है ।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल

वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*



5

पुरोवाक्

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई । फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी । उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए ! और हम चित्र लिखित-सी रह गई । तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष । तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी ! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी । उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है ।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया ।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है ।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है । सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन । सूक्ति अर्थात् सुकथन । सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है । सैकडों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ । सुत्तनिपात में कहा है —

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं । दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1 सुत्तनिपात - 2/21/6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

नि:संदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है – "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है – "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है – "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है । [3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।' [4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ

---

1 अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
योगवाशिष्ठ 5/4/5

2 प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सता सूक्ति प्रवर्तते ॥
ज्ञानार्णव

3 कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ – शिवलीलार्णव

4 नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी – योग वाशिष्ठ 5/4/5

अन्तस्तल को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है । वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है ।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई । मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई ।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं । इनका प्रभाव गहन हैं । ये अन्तर ज्योति जगाती हैं ।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है । यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी । इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षो तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया । लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है ।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है ।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है ।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है ।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं ।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है —

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार ! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है ।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह प्रथम सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें ।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा ।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं । इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है : **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं ।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.



हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ. श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डो. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारूतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं । इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं। बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है ।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है। बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं। इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' – इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये। इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया। तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं ।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है ।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें ।

पौष शुक्ला सप्तमी — *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

5 जनवरी, 1998 — *डॉ. सुदर्शनाश्री*

7

सुकृत सहयोगी

सुकृत सहयोगी

श्रेष्ठिवर्य

श्रीमान् खूबचंदभाई त्रिभोवनदास वोरा

संसार में ऐसे अनेक पुण्यशाली

मनुष्य होते हैं जो मौन और गुप्त भाव से

सेवा करने में प्रसन्न होते हैं ।

चित्त की प्रसन्नता जीवन की सर्वोत्तम औषधि है। यह संजीवनी है। ऐसे भाग्यशाली उदारमना सदा गुप्त रीति से साधु-सन्तों की सेवा में संलीन रहते हैं – श्रीमान् खूबचन्दभाई वोरा थराद (उ.गु.) निवासी ।

इन्होंने अध्ययनकाल से लेकर अद्यावधि हमारी वैयावच्च की है और वह भी अत्यन्त गुप्तभाव से । वास्तव में इन्होंने 'गुप्तदानं महापुण्यम्' की उक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ किया है ।

वे 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (प्रथम खण्ड) का प्रकाशन भी करवा रहे हैं ।

उनके विद्यानुराग तथा साधु-सेवादि की हम सराहना करती हैं और प.पूज्या वयोवृद्धा साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. उन्हें आशीष देती हैं।

वे भविष्य में भी ऐसे सुकृत में सदा सहयोगी बनेंगे, ऐसी हमें आशा है ।

— *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*

— *डॉ. सुदर्शनाश्री*



8

आमुख

– डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे । उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे । उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया । विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली । उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ – 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया । विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया ।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षो में भी अडिग रहे । सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें । स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक –

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा –
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति — 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए — जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है ।

इनकी व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरों या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्त्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए 80 वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे । 14 वर्ष शुभ काल है — मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे — सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)



९

मन्तव्य

— *डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी*

(पद्‌म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे। अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी। इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001



— पं. दलसुख मालवणिया

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं । उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है । साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है ।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं ।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी ।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा ।

दिनांक : 30-4-98
माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

सूक्ति-सुधारस: मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग"। जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषतः श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे।

वस्तुतः 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगतः सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगतः समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उठान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

12



— *डॉ. सागरमल जैन*

पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है। वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं। लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षों में पूर्ण हुई। जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है। प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है। इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं। प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं। उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं। इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है। यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं। अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी। इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है। प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

13

मन्तव्य

विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्‌मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं । विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं । सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं । प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं । समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं । क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं । क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं । ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वाग्देवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ्मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है । आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्‌मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है ।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है । इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है ।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है ।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है । इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्‌मयी साधना में

सर्मपिता करती हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') का रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

14

मन्तव्य

— *पं. जयनंदन झा,*
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यो ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है । साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है । राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है ।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है । परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है । भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी ।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये । इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा । इति । शुभम् ।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर



15

मन्तव्य

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान



16

मन्तव्य

— *डॉ. अखिलेशकुमार राय*

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रैल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)



17

मन्तव्य

— *डॉ. अमृतलाल गाँधी*
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998
738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर



मन्तव्य

— *भागचन्द जैन कवाड*
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड,
किशनगढ़ शहर (राज.)

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)


दर्पण

19

दर्पण

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।

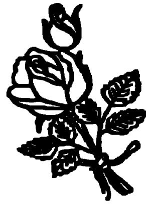
सूक्ति-सुधारस के षष्टम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-मुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ में न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं ।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ



'विश्वपूज्यः'
जीवन-दर्शन

जीवन-दर्शन

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता – महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा। गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं – 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल

संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया ।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ् मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी और उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया ।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे ।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था ।

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं ।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्‌भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया ।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी

ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने **'अभिधान राजेन्द्र कोष'** की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र माता संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा – इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्भासित करता है।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं। साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान् करते नहीं थकते। इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी। वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे। उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की। ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे। वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे।

1. अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हार्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित की। तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया। कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया। उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए। पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है। उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है। इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है। उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं। उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है। लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं। प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं। उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं। पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है —

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार ॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है। साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है।

चौपड़ क्रीड़ा- सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं —

1. जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥" [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है। साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है। इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

"प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥" [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय-वीणा पर अनुगुंजित है। 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान् – मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे। उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा ।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भरम विदारा रे ॥" [4]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. आनन्दघन ग्रन्थावली
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
4. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना॥" [1]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो॥" [2]

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे॥

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा ।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रुद्र है करम संहारा रे ॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा ।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे ॥'[1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है ।[2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता । उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है । उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है — आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म) । यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है । सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है । उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है —

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना ।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना ॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन. ।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जिनवर॰ ॥
पुरूषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि॰ ।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जिन॰ ॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश ।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि॰ ॥" [3]

1 जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

2 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री ।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी ॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री ।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री ।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री ॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री ।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी ॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

3. जिन भक्ति मंजूषा भाग - 1

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है ।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया । इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है । कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है । कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं । शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर कथाओं को सुगम बना दिया है ।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है । उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चन कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है । जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है । विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है । [1]

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है । यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है । उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है ।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकांर मिलता है — वह है — अनन्वय अलंकार — अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है ।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !


अभिधान राजेन्द्र कोश में,
सूक्ति-सुधारस
(प्रथम खण्ड)

1. धर्म में शीघ्रता

मा पडिबंध करेह ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृष्ठ-7]

— ***अन्तकृत् दशांग 3 वर्ग***

[धर्म कार्य में] विलम्ब मत करो ।

2. यथोचित

अहासुहं देवाणुप्पिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 7]

— ***अन्तकृत्दशांग 4 वर्ग***

हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो ।

3. मृत्यु निश्चित

जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** भाग [1 पृ. 7]

— ***अन्तकृत्दशांग 4 वर्ग***

जिसने जन्म लिया है, वह अवश्य मरेगा ।

4. पञ्चाति वर्जित

अइरोसो अइतोसो अइहासो दुज्जणेहिं संवासो ।
अइ उब्भडो य वेसो, पंच वि गुरूयं पि लहुयं पि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 11]
एवं भाग 2 पृ. 900

— ***धर्मसंग्रह - 2 / 71***

अतिरोष, अतितोष, अतिहास्य, दुर्जनों का सहवास और अति उद्भटवेष - ये पाँचों ही महान् को भी लघु बना देते हैं ।

5. आत्मवत् चाहो !

जं इच्छसि अप्पणतो, जंवण इच्छसि अप्पणंतो ।
तं इच्छं परस्स वियं, इत्तियगं जिण सासणयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 87]

— ***बृहदावश्यक भाष्य 4584***

जो अपने लिए चाहते हो, वह दूसरों के लिए भी चाहना चाहिए। जो अपने लिए नहीं चाहते हो, वह दूसरों के लिए भी नहीं चाहना चाहिए — बस इतना मात्र जिनशासन हैं। तीर्थंकरों का उपदेश है।

6. समाधि

सव्वारंभ परिग्गह-णिक्खेवो सव्वभूतसमया य।
एक्कग्गमण समाही, - णाया अह एत्तिओ मोक्खो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 87]

— ***बृहदावश्यक भाष्य 4585***

सर्व प्रकार के आरंभ और परिग्रह का त्याग, सभी प्राणियों के प्रति समता तथा चित्त की एकाग्रता रूप समाधि-बस इतना मात्र मोक्ष है।

7. विवेकान्ध

एकं हि चक्षुरमलं सहजोविवेकः,
तद्वद्भि रेव सह संवसति द्वितीयम्।
एतद् द्वयं भुवि न यस्य तत्त्वतोऽन्धस्,
तस्यापमार्ग चलने खलु कोऽपराधः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 105]
एवं अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 5 पृ. 70]

— ***आचारांग सटीक 1/2/3***

— ***धर्मरत्नप्रकरण सटीक 1/17/184***

एक पवित्र नेत्र तो है सहज विवेक, दूसरा है - विवेकी जनों के साथ निवास। संसार में ये दोनों ऑखें जिसके नहीं है, वह वस्तुतः अन्धा है। अगर वह कुमार्ग पर चलता है, तो अपराध ही क्या है ?

8. किञ्चित् श्रेयस्कर !

अकरणान्मन्दं करणं श्रेयः।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 123]

— ***विक्रम चरित्र - 1/3***

नहीं करने की अपेक्षा कुछ करना अच्छा है।

9. अकथा

मिच्छत्तं वेयन्तो, जं अन्नाणी कहं परिकहेइ ।
लिंगत्थो व गिही वा, सा अकहा देसिआ समए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 124]
एवं [भाग 6 पृ. 274]

— ***दशवैकालिक निर्युक्ति 209***

मिथ्या दृष्टि अज्ञानी — चाहे वह साधु के वेष में हो या गृहस्थ के वेष में, उसका कथन 'अकथा' कहा जाता है।

10. आरम्भासक्त जीव

आरम्भसत्तां गढिता य लोए,
धम्मं न याणंति विमोक्ख हेउं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 126]

— ***सूत्रकृतांग 1/10/16***

सावद्य आरंभ में आसक्त और विषय-भोगों में गृद्ध लोग मोक्ष के कारणभूत धर्म को नहीं जानते।

11. क्रोध-परिणाम

सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू ण संजले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 131]

— ***उत्तराध्ययन 2/26***

क्रोध करने से साधु अज्ञानियों के समान हो जाता है, अत: साधु क्रोध न करें।

12. अपशब्द

ददतु ददतु गालीं गालिमंतो भवन्तः ।
वयमपि तदभावात् गालिदानेऽप्यशक्ताः ।

जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं ।
न ददतु शश विषाणं ये महात्यागिनोऽपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 131]
— ***उत्तराध्ययन सटीक 2 अ०***

आपके पास अपशब्द (गाली) का धन है, दीजिए, दीजिये हमारे पास ऐसा धन न होने से हम देने में असमर्थ हैं। संसार में ऐसा स्पष्ट प्रतीत है कि जिसके पास जो होगा वही देगा। यथा - शशविषाण (खरगोश श्रृंग) ही नहीं तो वह प्राप्त भी नहीं होगा।

13. भिक्षु सहिष्णु रहे

अक्कोसेज्जपरो भिक्खुं न तेसिं पडिसंजले ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 131]
— ***उत्तराध्ययन 2/26***

यदि कोई भिक्षु को गाली दे तो वह उसके प्रति क्रोध न करे।

14. सच्चा भिक्षु

सम सुह दुक्ख सहे य जे, स भिक्खू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 132]
— ***दशवैकालिक 10/11***

जो सुख तथा दु:ख में एक रूप रहता है अर्थात् अनुकूल वस्तु की प्राप्ति में प्रसन्न न हो और प्रतिकूल की प्राप्ति में खिन्न न हो; वही सच्चा भिक्षु है।

15. अज्ञानी में अविश्वास

अगीयत्थरस वयणेणं, अमियं पि न घोट्टए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 162]
— ***महानिशीथ सूत्र 6/144***

अगीतार्थ - अज्ञानी के कहने से अमृत भी नहीं पीना चाहिए।

16. अगीतार्थ-संसर्गः दुःखद

विसं खाएज्ज हालाहलं, तं किर मारेइ तक्खणं ।
ण करेऽगीयत्थसंसग्गिं, विढवे लक्खंपिजं तहिं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 162]
– *महानिशीथ 6/150*

हलाहल विषपान करना श्रेष्ठ है, जो तत्क्षण मृत्यु प्रदान कर मुक्त कर देता है; किन्तु लाखों का लाभ होने पर भी अगीतार्थ का सहवास / संसर्ग नहीं करना चाहिए क्योंकि वह क्षण-क्षण दुःख देता है ।

17. अगीतार्थ के साथ मत रहो

अगीयत्थेण समं एक्कं, खणंद्धंपि न संवसे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 162]
– *महानिशीथ 6/148*

अगीतार्थ के साथ एक क्षण भी न रहें ।

18. धीर साधक

अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 164]
– *आचारांग 1/3/2*

हे धीर साधक ! तू अग्र और मूल का विवेक करके उसे पहचान ।

19. धन की बैसाखी पर धर्म नहीं चलता

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा, तस्या नीहा गरीयसी ।
प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 179]
– *पद्मपुराण 5/19/252*
एवं हारिभद्रीय अ. 4/6

धर्म-कार्य के लिए जिसे धन की चाह है, उसकी वह चाह भी श्रेयस्कर नहीं होती है । कीचड़ लगाकर फिर उसे धोने की अपेक्षा दूर रहकर उसे नहीं छूना ही अच्छा है ।

20. पुण्य-कर्म

वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ।
अन्न प्रदानमेतत्तु पूर्तं तत्त्व विदो विदुः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 180]
– *मनुस्मृति 4/226*
– *योगदृष्टि समुच्चय - 117*

वापी, कूप, सरोवर तथा देवमंदिर बनवाना, अन्न का दान देना पूर्त-पुण्य कर्म है, ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं ।

21 बुद्धियुक्त वाणी

अचक्खु ओवनेयारं, बुद्धि अणेसए गिरा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 181]
– *व्यवहार भाष्य पीठिका 76*

अंधा व्यक्ति जिसप्रकार पथ-प्रदर्शक की अपेक्षा रखता है, उसीप्रकार वाणी, बुद्धि की अपेक्षा रखती है ।

22. ज्ञानी-अखिन्न

नाणी नो परिदेवए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 190]
एवं [भाग 4 पृ. 2146]
– *उत्तराध्ययन 2/15*

ज्ञानी खेद नहीं करें ।

23. भोजन अनुचित

अजीर्णे अभोजनमिति ।

– **अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]
– *धर्मबिन्दु 21/43*

अजीर्ण में भोजन उचित नहीं है ।

24. रोग का मूल

अजीर्ण प्रभवा रोगाः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]

– ***धर्मसंग्रह 1 अधिकार पृ. 8***

एवं धर्मबिन्दु सटीक – 33

सारे रोग अजीर्ण से पैदा होते हैं ।

25 अजीर्ण-प्रकार

तत्राजीर्णं चतुर्विधंः-

आमं विदग्धं विष्टब्धं, रसशेषं तथा परम् ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]

– ***धर्मबिन्दु सटीक-33***

अजीर्ण चार प्रकार का है – आम, विदग्ध, विष्टब्ध और रसशेष ।

26. चतुर्विध अजीर्ण-व्याख्या

आमे तु द्रवगन्धित्वं, विदग्धे धूमगन्धिता ।

विष्टब्धे गात्रभङ्गोऽत्र रसशेषे तु जाड्यता ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]

– ***धर्मबिन्दु सटीक-34***

१ आम = अजीर्ण में नरमदस्त तथा छाश आदि की दुर्गन्ध - द्रवगन्धी होती है । २. विदग्ध = अजीर्ण में खराब धूँए जैसी दुर्गन्ध आती है । ३. विष्टब्ध = अजीर्ण में शरीर टूटता है, शरीर में पीड़ा होती है तथा अवयव ढीले पड़ जाते हैं और ४. रसशेष = अजीर्ण में जड़ता-शिथिलता व आलस आता है ।

27. अजीर्ण-लक्षण

मलवातयोर्विगन्धो, विड्भेदो गात्रगौरवमरूच्यम् ।

अविशुद्धश्चोद्गारः, षड जीर्ण व्यक्त लिङ्गानि ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]

– ***धर्मबिन्दु सटीक-35***

(१) मल और (२) वायु की हमेशा से भिन्न दुर्गन्ध (३) विष्ठा में हमेशा से भिन्नता, (४) शरीर का भारीपन (५) अन्न पर अरुचि तथा (६) बुरी डकार आना। अजीर्ण के ये ६ लक्षण हैं।

28. अजीर्ण से रोग

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः, प्रसेकः सदनं भ्रमः।
उपद्रवा भवन्त्येते, मरणं वाऽप्य जीर्णतः॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]
– ***धर्मबिन्दु सटीक 36***

अजीर्ण के कारण मूर्च्छा, प्रलाप, कम्पन, अधिक पसीना व थूंक आना, शरीर नरम होना तथा चक्कर आना आदि उपद्रव होते हैं और अचेतन से अन्त में मृत्यु भी होती है अर्थात् अजीर्ण के समय कुछ न खाकर लंघन करना चाहिए।

29. बलप्रद - जल

अजीर्णे भोजने वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम्।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 203]
वाचस्पत्याभिधान [कोष] चाणक्य नीति 8/7

बदहजमी होने पर पानी बलवर्धक है और हजम हो जाने पर पानी शक्तिवर्धक है।

30. आर्जव-अंकुर

अज्जवयाएणं काउज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 219]
– ***उत्तराध्ययन 29/50***

सरल भाव से जीव को काया की ऋजुता, भाषा की ऋजुता और अविसंवादन भाव की प्राप्ति होती है।

31. सच्चा आराधक

अवि संवायणं संपन्नयाएणं जीवे।
धम्मस्स आराहए भवइ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 219]
– *उत्तराध्ययन 29/50 गद्य आलापक*

दम्भरहित, अविसंवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक होता है ।

32. संतुलित स्व-पर

जे अज्झत्थं जाणति से बहिया जाणति ।
जे बहिया जाणति से अज्झत्थं जाणति ॥
एतं तुल्लमण्णेसिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 227]
– एवं [भाग 6 पृ. 1061]
– *आचारांग 1/1/7/56*

जो अपने अन्दर [अपने सुख-दुःख की अनुभूति] को जानता है, वह बाहर [दूसरों के सुख-दुःख की अनुभूति] को भी जानता है । जो बाहर को जानता है, वह अन्दर को भी जानता है । इसतरह दोनों को, स्व और पर को एक तुला पर रखना चाहिए ।

33. अध्यात्म-दोष

कोहं च माणं च तहेव मायं ।
लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 227]
– *सूत्रकृतांग 1/6/26*

क्रोध, मान, माया और लोभ - ये चारों अन्तरात्मा के (अध्यात्म के) भयंकर दोष हैं ।

34. अध्यात्म-स्वरूप

औचित्याद् वृत्तमुक्तस्य, वचनात् तत्त्व-चिन्तनम् ।
मैत्र्यादि सारमत्यन्त-मध्यात्मं तद् विदोः विदुः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 227]
– *योगबिन्दु - 358*

औचित्यपूर्ण - विधिवत् चारित्र्य सेवी पुरुष का शास्त्रानुगामी तत्त्व-चिन्तन, मैत्री, करुणा, प्रमोद तथा माध्यस्थादि उत्तम भावनाओं का जीवन में स्वीकार करना ज्ञानीजनों द्वारा 'अध्यात्म' कहा जाता है।

35. वचनगुप्त - आत्मसंवृत्त

वइगुत्ते अज्झप्प संवुडे परिवज्जए सदा पावं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 229]

— *आचारांग 1/5/4/165*

मौन तथा आत्मलीन होकर पापकर्म से दूर रहे।

36. ज्ञान और कर्म

आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 240]
एवं [भाग 3 पृ. 556]

— *सूत्रकृतांग 1/12/11*

ज्ञान और कर्म [विद्या एवं चरण] से ही मोक्ष प्राप्त होता है।

37. अष्ट पूजा पुष्प

अहिंसा सत्य मस्तेयं, ब्रह्मचर्यमसङ्गता ।
गुरुभक्ति स्तपोज्ञानं, सत्पुष्पाणि प्रचक्षते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 246]

— *हारिभद्रीय अष्टक 3*

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, निःसंगता. गुरु-भक्ति, तप और ज्ञान - ये पूजा के आठ फूल कहलाते हैं।

38. बुद्धि-गुण

शुश्रूषा श्रवणं चैव, ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहोऽपोहोऽर्थ विज्ञानं, तत्त्व ज्ञानं च धी गुणाः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 247]

— *अभिधान चिंतामणि 2/210-211*
एवं कामन्दकीय नीतिसार 4/21

सुनने की इच्छा करना (शुश्रूषा), सुनकर तत्त्व को ग्रहण करना (श्रवण), ग्रहण किए हुए तत्त्व को हृदय में धारण करना (ग्रहण), फिर उस पर विचार करना (धारणा), विचार करने के पश्चात् उसका सम्यक् प्रकार से निश्चय करना (ऊहापोह), निश्चय द्वारा वस्तु को समझना (अर्थविज्ञान) और अन्त में उस वस्तु के तत्त्व की जानकारी करना (तत्त्वज्ञान) — ये बुद्धि के आठ गुण हैं।

39. नरक-द्वार

चत्वारो नरक द्वाराः, प्रथमं रात्रि भोजनम् ।
परस्त्री सङ्गमश्चैव, सन्धानानन्त कायिके ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 264]
— *धर्मसंग्रह 2 अधि० पृ. 75*
एवं मनुस्मृति

नरक गमन के चार द्वार हैं — १. रात्रिभोजन, २. परस्त्री गमन, ३. अचार भक्षण और ४. अनन्तकाय भक्षण।

40. क्रिया-बंध

अहासुत्तं रियं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जति ।
उस्सुत्तं रीयं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 272]
— *भगवती 7/1/16 [2]*

सिद्धान्तानुकूल प्रवृत्ति करनेवाला साधक ऐर्यापथिक [अल्प-कालिक] क्रिया का बन्ध करता है। सिद्धान्त के प्रतिकूल प्रवृत्ति करनेवाला सांपरायिक [चिरकालिक] क्रिया का बन्ध करता है।

41. नाना प्रदर्शन

मायी विउव्वति, नो अमायी विउव्वति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 274]

— *भगवती 13/9/26*

जिसके अन्तर में माया का अंश है, वही विकुर्वणा [नाना रूपों का प्रदर्शन] करता है। अमायी [सरलात्मावाला] नहीं करता।

42. सन्त-हृदय

सारद सलिल इव सुद्धहियया
विहग इव विप्पमुक्का
वसुंधरा इव सव्व फास विसहा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 278]
— *सूत्रकृतांग 2/2/38*

मुनिजनों का हृदय शरदकालीन नदी के जल की तरह निर्मल होता है। वे पक्षी की तरह बन्धनों से मुक्त और पृथ्वी की तरह समस्त सुख-दु:खों को समभाव से सहन करनेवाले होते हैं।

43. श्रमण-धर्म

खंती य मद्दवऽज्जव, मुत्ती तव संजमे य बोधव्वे।
सच्चं सोयं आकिंचणं च, बंभं च जइ धम्मो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 279]
— *तित्थोगाली पइण्णाय 1207*

क्षमा, मार्दव [मृदुता], सरलता, कर्मबन्ध से मुक्त होने की भावना, तपश्चरण, संयम, सत्य-भाषण, आभ्यन्तर शुद्धि, अकिञ्चन भाव और ब्रह्मचर्य का पालन ये दस श्रमण धर्म है।

44. संयमी आत्मा

इच्छा कामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 280]
— *उत्तराध्ययन 35/3*

इच्छा, काम-वासना और लोभ को छोड़ दे।

45. श्रमण-निवास

मणोहरं चित्तहरं, मल्लधूवेण वासियं ।
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 280]
– *उत्तराध्ययन 35/4*

मुनि ऐसे निवास की मन से भी इच्छा नहीं करे, जो मनोहर हो, जो चित्र युक्त हो, जो माला और धूप से सुगन्धित हो, दरवाजे सहित हो और श्वेत चन्द्रवे वाला हो ।

46. निर्ग्रन्थ-निवास

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए ।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परम संजए ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 280]
– *उत्तराध्ययन 35/7*

जो स्थान प्रासुक हो, किसी को पीड़ाकारी न हो एवं जहाँ स्त्रियों का उपद्रव न हो, परम संयमी साधु वहाँ निवास करे ।

47. आहार क्यों ?

न रसट्ठाए भुंजेज्जा जवणट्ठाए महामुणी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 281]
– *उत्तराध्ययन 35/17*

मुनि स्वाद के लिए अथवा शारीरिक धातुओं की वृद्धि के लिए आहार न करे, अपितु संयम रूप यात्रा के निर्वाह के लिए ही आहार ग्रहण करे ।

48. कंचन माटी जाने

समलेट्ठु कंचणे भिक्खू ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 281]
– एवं [भाग 7 पृ. 281]
– **उत्तराध्ययन 35/13**

मुनि सोना और मिट्टी के ढेले को समान समझनेवाला होता है।

49. भिक्षावृत्ति सुखावह

भिक्खावित्ती सुहावहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 281]

— *उत्तराध्ययन 35/15*

भिक्षावृत्ति सुख देनेवाली है।

50. मुनि-प्रवृत्ति

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अनियाणे अकिंचणे ।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 282]

— *उत्तराध्ययन 35/19*

मुनि शुक्लध्यान में लीन रहे, सांसारिक सुखों की कामना न करे, सदा अकिञ्चनवृत्ति से रहे तथा जीवनभर काया का त्याग कर विचरण करता रहे।

51. साधक - एषणा रहित

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा ।
इड्ढी सक्कार-सम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 282]

— *उत्तराध्ययन 35/18*

संयमी साधक अर्चना, वन्दना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान को मन से भी न चाहे।

52. पूर्ण आत्मस्थ

निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो ।
संपत्तो केवलं नाणं, सासए परिनिव्वुडे ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 282]

— *उत्तराध्ययन 35/21*

निर्मम, निरहंकार, वीतराग और आस्रवों से रहित निर्ग्रन्थ मुनि, शाश्वत केवल ज्ञान को पाकर परिनिवृत्त हो जाता है अर्थात् पूर्णतया आत्मस्थ हो जाता है ।

53. हितकारी परिताप

कामं परितावो, असायहेतु जिणेहिं पणतो ।
आत-परहितकरो पुण, इच्छिज्जइ दुस्सले खलु उ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 297]
– *बृहदावश्यक भाष्य 5108*

यह ठीक है कि जिनेश्वर देव ने पर-परिताप को दुःख का हेतु बताया है, किन्तु शिक्षा की दृष्टि से दुष्ट शिष्य को दिया जानेवाला परिताप इस कोटि में नहीं आता है, चूँकि वह तो स्व-पर का हितकारी होता है ।

54. लोभ में अनाकृष्ट

णीवारे य न लीएज्जा, छिन्न सोते अणाइले ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 306]
– **सूत्रकृतांग 1/15/12**

शोक और विषय-कषाय रहित आत्मा, प्रलोभन देकर सूअर को फंसाने वाले चावल के दाने की तरह क्षणिक विषय-लोभ में आकर्षित न होवे ।

55. तपश्चरण

भव कोडी संचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 321]
– **एवं** [भाग 4 पृ. 2200]
– *उत्तराध्ययन 30/6*

साधक करोड़ों भवों के संचित कर्मों को तपश्चरण के द्वारा क्षीण कर देता है ।

56. तप, कर्मक्षय - प्रक्रिया

जहा महातलागस्स, सन्निरूद्धे जलागमे ।
उर्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥

एवं तु संजयस्सा वि पावकम्म निरासवे ।
भवकोड़ि संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 321]
– **एवं** [भाग 4 पृ. 2199 - 2200]
– ***उत्तराध्ययन 30/5-6***

जिसप्रकार किसी बड़े तालाब का पानी समाप्त करने के लिए पहले जल के आने के मार्ग रोके जाते हैं फिर कुछ पानी उलीच-उलीच कर बाहर फैंका जाता है और कुछ सूर्य की तेज धूप से सूख जाता है उसीप्रकार संयमी पुरुष व्रतादि के द्वारा नए कर्मास्रवों को रोक देता है और पुराने करोड़ों जन्मों के संचित किए हुए कर्मों को तप के द्वारा सर्वथा क्षीण कर डालता है ।

57. दुर्लभ मानव-भव

माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 322]
– ***उत्तराध्ययन 20/11***

मनुष्य जन्म निश्चय ही दुर्लभ है ।

58. अनाथ नाथ कैसे ?

अप्पणा अणाहो संतो, कहस्स नाहो भविस्ससि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 323]
– ***उत्तराध्ययन 20/12***

तू स्वयं अनाथ है, तो फिर दूसरे का नाथ कैसे होगा ?

59. मित्र-शत्रु कौन ?

अप्पामित्तममित्तं च दुप्पट्ठि य सुपट्ठिओ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 325]
– **एवं** [भाग 2 पृ. 231]
– ***उत्तराध्ययन 20/37***

सदाचार में प्रवृत्त आत्मा मित्र है और दुराचार में प्रवृत्त होने पर वही शत्रु है ।

60. आत्मा ही सब कुछ

अप्पानई वैतरणी, अप्पा कूडसामली ।
अप्पा कामदुहा धेनू, अप्पा मे नंदणं वणं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 325]
— एवं [भाग 2 पृ. 231]
— *उत्तराध्ययन 20/36*

मेरी [पाप में प्रवृत्त] आत्मा ही वैतरणी नदी और कूट शाल्मली वृक्ष के समान कष्टदायी है । आत्मा ही [सत्कर्म में प्रवृत्त] कामधेनु व नंदनवन के समान सुखदायी भी है ।

61. कायर-जन

सीयन्ति एगे बहु कायरा नरा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 325]
— *उत्तराध्ययन 20/38*

अनेक मनुष्य कायर होते हुए दुःखी होते हैं ।

62. वीर मार्गानुसरण के अयोग्य

आउत्तया जस्सय नत्थि काई ।
इरियाए भासाए तहेसणाए ॥
आयाण निक्खेव दुगुंछणाए ।
न वीर जायं अणुजाई मग्गं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 325-326]
— *उत्तराध्ययन 20/40*

जिसे ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग समिति में किंचित् मात्र यतना [विवेक] नहीं है, वह मुनि वीर मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता ।

63. कर्मबन्ध-अनुच्छेद

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं सम्मं नो फासयति पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 325]

— ***उत्तराध्ययन 20/39***

जो साधु बनकर महाव्रतों का अच्छी तरह पालन नहीं करता, इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता तथा रसों में आसक्त रहता है, वह मूल से कर्म बन्धनों का उच्छेद नहीं कर पाता।

64. कर्ता-भोक्ता-आत्मा

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाण य।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 325]

— एवं [भाग 2 पृ. 231]

— ***उत्तराध्ययन 20/37***

आत्मा ही सुख-दुःख का कर्ता और भोक्ता है।

65. रत्नपारखी

राढामणी वेरुलियप्पकासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 326]

— ***उत्तराध्ययन 20/42***

वैडूर्य रत्न के समान चमकनेवाले काँच के टुकड़े का, जानकार जौहरी के समक्ष कुछ भी मूल्य नहीं होता।

66. विषय वेष्टित धर्म

विसं तु पीयं जह काल कूडं,
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसेव धम्मो विसओ व वन्नो,
हणाइ वेयाल इवाविवण्णो॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 326]

— **उत्तराध्ययन 20/44**

जैसे पिया हुआ कालकूट विष और विपरीत पकड़ा हुआ शस्त्र अपना ही घातक होता है, वैसे ही शब्दादि विषयों की पूर्ति के लिए किया हुआ धर्म भी अनियंत्रित वेताल के समान साधक का विनाश कर डालता है।

67. निमित्तज्ञ

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे ।
निमित्त कोऊहल संपगाढे ॥
कुहेड विज्जासवदार जीवी ।
न गच्छइ सरणं तंमि काले ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 326]
— *उत्तराध्ययन 20/45*

जो श्रमण लक्षण और स्वप्नों का शुभाशुभ फल बताता है, निमित्त भूकंपादि द्वारा भविष्य कहता है, जो कौतुक-कार्य में अत्यन्त आसक्त है तथा इन असत्य एवं आश्चर्यकारिणी विद्याओं से अपना जीवन बीताता है वह कर्मफल भोगने के समय किसी की शरण नहीं पा सकता ।

68. आत्महन्ता

न तं अरी कंठ छेत्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 327]
— **उत्तराध्ययन 20/48**

गर्दन काटनेवाला शत्रु वैसा अनर्थ नहीं करता, जैसे बिगड़ा हुआ अपना मन [आत्मा] करता है ।

69. अग्निवत् सर्वभक्षी - श्रमण

उद्देसियं कीयगडं नियागं,
त मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गिविवा सव्वभक्खी भवित्ताइओ
चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 327]
— *उत्तराध्ययन 20/47*

जो श्रमण औद्देशिक, क्रीतकृत, नियतपिंड और अनेषणीय किंचित् मात्र भी पदार्थ नहीं छोड़ता, वह अग्निवत्-सर्व भक्षी होकर पापकर्म करके नरकादि में जाता है ।

70. निर्ग्रन्थ-पथ

मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,
महानियं ठाणवए पहेणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 327]
– *उत्तराध्ययन 20/51*

मेधावी को कुशील पुरुषों के मार्ग को छोड़कर महानिर्ग्रन्थों के मार्ग पर चलना चाहिए ।

71. गृद्धात्मा कुररीवत्

कुररीविवा भोग रसाणु गिद्धा,
निरट्ठ सोया परितावमेइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 327]
– *उत्तराध्ययन 20/50*

काम-भोगों के रसों में गृद्ध आत्मा अन्त में निरर्थक शोक करनेवाली कुररी नामक पक्षी की तरह परिताप को प्राप्त होती है ।

72. निर्ग्रन्थ निराश्रव

निरासवे संख वियाण कम्मं,
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 327]
– *उत्तराध्ययन 20/52*

निर्ग्रन्थ निराश्रव होकर कर्मों का सम्यक् प्रकार से क्षय करके विपुल, उत्तम और ध्रुव स्थान को प्राप्त होता है ।

73. पदार्थ - अनित्यता

यत्प्रातस्तन्न मध्याह्ने, यन्न मध्याह्ने न तन्निशि ।
निरीक्ष्यते भवेऽस्मिन् हि, पदार्थानामनित्यता ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 331]
– *धर्मसंग्रह सटीक 3 अधिकार एवं योगशास्त्र 4/57*

जिस पदार्थ की स्थिति प्रातःकाल में है, वह मध्याह्न के समय नहीं रहती और जो मध्याह्न में दिखाई देती है वह संध्या को नहीं दिखाई देती। इसप्रकार इस संसार में पदार्थों की अनित्यता दिखाई देती है।

74. विनश्वर शरीर

शरीरं देहिनां सर्व - पुरुषार्थ निबन्धनम्।
प्रचण्डपवनोद्धूत, — घनाघनविनश्वरम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 331]
— ***योगशास्त्र 4/58***

सभी पुरुषार्थों का कारणभूत मनुष्यों का यह शरीर प्रचण्ड वायु से बिखेरे गए बादल जैसा विनाशशील है।

75. तीन आई - गई

कल्लोल चपला लक्ष्मीः, सङ्गमाः स्वप्नसंनिभाः।
वात्याव्यतिकरोत्क्षिप्त - तुलतुल्यं च यौवनम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 331]
— ***योगशास्त्र 4/59***

लक्ष्मी समुद्र की तरंगों के समान चपल है, स्वजनादि के संयोग स्वप्नवत् है और जवानी वायु के समूह से उड़ाई गई रुई जैसी है।

76. अनित्य-चिन्तन

इत्यनित्यं जगद्वृत्तं, स्थिर चित्तः प्रतिक्षणम्।
तृष्णा कृष्णाहिमन्त्राय निर्ममत्वाय चिन्तयेत्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— ***योगशास्त्र 4/60***

तृष्णा रूपी काली नागिन को वश करने वाले मंत्र के समान वीतराग-भाव की प्राप्ति के लिए जगत् के इस अनित्य स्वरूप का स्थिर चित्त से प्रतिक्षण चिंतन करना चाहिए।

77. दम्भ !

जइ विय णिगिणे किसे चरे, जइविय भुंजियमासमंतसो ।
जे इह मायादि मिज्जती, आगंता गब्भायऽणंत सो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/9***

भले ही नग्न रहे, मास-मास का अनशन करे और शरीर को कृश एवं क्षीण कर डाले, किन्तु जो अन्दर में दम्भ रखता है, वह जन्म-मरण के अनन्त चक्र में भटकता ही रहता है ।

78. जीवन-मरण

ताले जह बंधणच्चुते, एवं आउक्खयम्मि तुट्टती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/6***

जैसे बंधन से गिरा हुआ ताड़फल टूट जाता है वैसे ही आयुष्य के क्षय होते ही प्राणी परलोक चला जाता है ।

79. जीवन-क्षणभंगुर

पुरिसोरमपाव कम्मुणा, पलियंतं मणुयाण जीवियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/10***

हे पुरुष ! तू जीवन की क्षणभंगुरता को जानकर शीघ्र ही पापकर्मो से मुक्त हो जा ।

80. मोहकर्म संचयी

सन्ना इह काम मुच्छिया, मोह जंति नरा असंवुडा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— ***सूत्रकृतांग 1/2/1/10***

जो मनुष्य इस संसार में आसक्त हैं, विषय-भोगों में मूर्च्छित हैं और हिंसा झूठ आदि पापों से निवृत्त नहीं है, वे मोहकर्म का संचय करते रहते हैं ।

81. कर्म विपाक

अभिनूम कडेहिं मुच्छिए,
तिव्वं से कम्मेहिं किच्चती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— *सूत्रकृतांग 1/2/1/7*

माया आदि प्रच्छन्न दाम्भिक कृत्यों में आसक्त व्यक्ति अन्त में कर्मो द्वारा तीव्र क्लेश पाता है ।

82. अनुशासन

अणुसासण मेव पक्कमे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 332]
— *सूत्रकृतांग 1/2/1/11*

अनुशासन के अनुरूप संयममार्ग में ही पराक्रम करो ।

83. मन्दबुद्धि उपदेश-पात्र नहीं

आमे घड़े निहित्तं, जहा जलं तं घडं विणासेइ ।
इअ सिद्धंत रहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 351]
— *निशीथ भाष्य 6243*

मिट्टी के कच्चे घड़े में रखा हुआ जल जिसप्रकार उस घड़े को ही नष्ट कर डालता है, वैसे ही मन्दबुद्धि को दिया हुआ गंभीर शास्त्र-ज्ञान, उसके विनाश के लिए ही होता है ।

84. यथा आकृति तथा गुण

यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 352]
— *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका सटीक 1*

मनुष्य की जैसी आकृति है तदनुरूप उसमें गुण रहते हैं ।

85. कल्याण-कामना

के कल्लाणं नेच्छइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 353]
– ***बृहत्कल्प भाष्य 247***

संसार में कौन ऐसा है, जो अपना कल्याण न चाहता हो ।

86. तेजस्वी वचन

गुण सुट्ठियस्स वयणं, घयपरिसित्तुव्व पावओ भाइ ।
गुण हीणस्स न सोहइ, नेह विहूणो जह पईवो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 353]
– ***बृहत्कल्प भाष्य 245***

गुणवान् व्यक्ति का वचन घृतसिंचित अग्नि की तरह तेजस्वी होता है, जबकि गुणहीन व्यक्ति का वचन स्नेहरहित (तेल शून्य) दीपक की तरह तेज और प्रकाश से शून्य होता है ।

87. महाजन-मार्ग

जो उत्तमेहिं पहओ, मग्गो सो दुग्गमो न सेसाणं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 353]
– ***बृहत्कल्प भाष्य 249***

जो मार्ग महापुरुषों द्वारा चलकर प्रहत = सरल बना दिया गया है, वह अन्य सामान्य जनों के लिए दुर्गम नहीं होता ।

88. दृष्टि - दर्पण

दविए दंसण सुद्धा, दंसण सुद्धस्स चरणं तु ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 356]
– ***ओघनिर्युक्ति भाष्य 7***

द्रव्यानुयोग (तत्त्वज्ञान) से दर्शन [दृष्टि] शुद्ध होता है और दर्शन शुद्धि होने पर चारित्र की प्राप्ति होती है ।

89. धर्मकथा

चरण पडिवत्ति हेउं, धम्मकहा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 356]

– ***ओघनिर्युक्ति भाष्य 7***

आचार रूप सद्गुणों की प्राप्ति के लिए धर्मकथा कही जाती है ।

90. पर-ब्रह्म अगम्य

अतीन्द्रियं परं ब्रह्म, विशुद्धानुभवं विना ।
शास्त्र युक्ति शतेनापि, नगम्यं यद् बुधाः जगुः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 392]

– ***ज्ञानसार 26/3***

जो परब्रह्म है वह अतीन्द्रिय है, परन्तु विशुद्ध अनुभव के बिना सैकड़ों शास्त्र-युक्तियों से भी उसे नहीं जाना जाता, ऐसा पण्डितजन कहते हैं ।

91. शास्त्र:मात्र दिग्दर्शक

व्यापारः सर्वशास्त्राणां दिक्प्रदर्शनमेव हि ।
पारं तु प्रापयत्येकोऽनुभवो भववारिधेः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 392]

– ***ज्ञानसार 26/2***

वस्तुत: सर्व शास्त्रों का उद्यम दिग्दर्शन कराने का ही है, लेकिन सिर्फ एक अनुभव ही संसार समुद्र से पार लगाता है ।

92. शास्त्रास्वादी विरले

केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्र क्षीराऽवगाहिनी ।
विरलातद्रसास्वाद विदोऽनुभव जिह्वया ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 393]

– ***ज्ञानसार 26/5***

लोग शास्त्र रूपी खीर अपनी-अपनी कल्पना रूपी कड़छी से हिलाते हैं, परन्तु अनुभवरूपी जीभ से उसका स्वाद तो विरले लोग ही लेते हैं ।

93. धर्म-पात्रता

अणुसासणं पुढो पाणे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 421]

– ***सूत्रकृतांग 1/15/11***

एक ही धर्मतत्त्व को प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी भूमिका के अनुसार पृथक्-पृथक् रूप में ग्रहण करता है ।

94. सत्योपदेश

सच्चे तत्थ करे हु वक्कमं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 421]

– ***सूत्रकृतांग 1/2/3/14***

सत्य हो, उसी में पराक्रम करो ।

95. स्याद्वाद का सिक्का

आदीपमा व्योम सम स्वभावं ।
स्याद्वाद मुद्रानति भेदिवस्तु ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 423]

– ***अन्ययोग व्यवच्छेद द्वात्रिंशिका - 5***

स्याद्वाद का सिक्का संपूर्ण संसार में चलता है । छोटे से दीपक से लेकर व्यापक व्योम (आकाश) पर्यन्त सभी वस्तुएँ स्याद्वाद-अनेकान्त की मुद्रा से अङ्कित है ।

96. स्याद्वाद

भागे सिंहो नरो भागे, योऽर्थो भाग द्वयात्मकः ।
तम भागं विभागेन, नरसिंहः प्रचक्षते ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 425]

– **शास्त्रवार्ता समुच्चय**

नृसिंहावतार शरीर का एक भाग सिंह के समान है और दूसरा भाग पुरुष के समान है । परस्पर दो विरुद्ध आकृतियों के धारण करने से यद्यपि वह भाग रहित है; फिर भी विभाग करके लोग उसे "नरसिंह" कहते हैं ।

97. पदार्थ - स्वरूप

घटमौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोद माध्यस्थं जनोयाति सहेतुकम् ॥
पयोव्रतो न दध्यति न पयोऽति दधिव्रतः ।
अगोरस व्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 425]
— ***आप्तमीमांसा 59-60***

घड़े, मुकुट और सोने को चाहने वाले पुरुष घड़े के नाश, मुकुट के उत्पाद और सोने की स्थिति में क्रम से शोक, हर्ष और माध्यस्थ भाव रखते हैं तथा दूध का व्रत रखनेवाला पुरुष दही नहीं खाता, दही का नियम लेनेवाला पुरुष दूध नहीं पीता और गोरस का व्रत लेनेवाला पुरुष दूध और दही दोनों नहीं खाता; इसलिए संसार की प्रत्येक वस्तु उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है।

98. वस्तु-तत्त्व प्ररूपणा

दव्वं खित्तं कालं, भाव पज्जाय देससंजोगे ।
भेदं च पमुच्च समा, भावाणं पणवण पज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 438]
— ***सन्मतितर्क 3/60***

वस्तु तत्त्व की प्ररूपणा द्रव्य,[१] क्षेत्र,[२] काल,[३] भाव,[४] पर्याय,[५] देश,[६] संयोग[७] और भेद[८] के आधार पर ही सम्यक् होती है।

[१. पदार्थ की मूल जाति, २. स्थिति क्षेत्र, ३. योग्य समय, ४. पदार्थ की मूल शक्ति, ५. शक्तियों के विभिन्न परिणमन अर्थात् कार्य, ६. व्यावहारिक स्थान, ७. आस-पास की परिस्थिति, ८. प्रकार]।

99. योग्य-प्रवक्ता

ण हु सासण भत्ती मे-त्तएण सिद्धन्त जाणओ होइ ।
ण वि जाणओ विणियमा, पणवणा निच्छिओ णाम ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 440]

— ***सन्मति तर्क 3/63***

मात्र आगम की भक्ति के बल पर ही कोई सिद्धान्त का ज्ञाता नहीं हो सकता और हर कोई सिद्धान्त का ज्ञाता भी निश्चित रूप से प्ररूपणा करने के योग्य प्रवक्ता नहीं हो सकता।

100. स्याद्वाद - नित्यानित्य

इच्चेय गणि पिडगं, निच्चं दव्वट्ठियाए नायव्वं ।
पज्जाएण अणिच्चं, निच्चानिच्चं च सियवादो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 441]

— ***तित्थुगाली पयन्ना मूल 870***

यह गणिपिटक द्रव्य या तत्त्व की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय अर्थात् शब्द की अपेक्षा से अनित्य है। इसप्रकार वस्तु की नित्यानित्यता का जो प्रतिपादक है, वह 'स्याद्वाद' है।

101. स्याद्वाद - महिमा

जो सियवायं भासति, पमाण-नयपेसलं गुणाधारं ।
भावेइ सेण णसेयं, सो हि पमाणं पवयणस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 441]

— ***तित्थुगाली पयन्नामूल 871***

जो प्रमाण और नय के विशिष्ट गुणों के धारक स्याद्वाद का व्याख्यान करता है अर्थात् स्याद्वाद की अपेक्षा से वस्तु स्वरूप का विवेचन करता है वह गणिपिटक भाव की अपेक्षा से नष्ट नहीं होता है और वही जिनप्रवचन की प्रामाणिकता का आधार है।

102. स्याद्वाद - निंदक

जो सियवायं निंदति, पमाण नय पेसल गुणाधारं ।
भावेण दुट्ठभावो, न सो पमाण पवयणस्स ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 441]

— *तित्थुगाली पयन्ना मूल 872*

जो प्रमाण और नय के विशिष्ट गुणों के धारक स्याद्वाद की निंदा करता है वह भावों से दुष्ट भाववाला है, उसका कथन प्रवचन का प्रमाण नहीं हो सकता है अर्थात् उसका कथन प्रामाणिक नहीं है ।

103. अज्ञान : दुःखरूप

अज्ञानं खलु कष्टं, क्रोधादिभ्योऽपि सर्वपापेभ्यः ।
अर्थं हितमहितं वा न वेत्ति येनावृत्तो लोकः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 488]
— ***श्री आगमीय सूक्तावलि - पृ. 19***
आचारांग सूक्तानि 23 (113)

अज्ञान, क्रोधादि सर्व पापों से भी सचमुच ही बड़ा दुःखदायी है, क्योंकि इससे आच्छादित लोग हिताहित वस्तु को नहीं समझते ।

104. अज्ञानता कष्ट

अज्ञानं खलु कष्टम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 488]
— ***श्री आगमीय सूक्तावलि पृ. 19***
— ***आचारांग सूक्तानि 23 (113)***

अज्ञानता ही सभी प्रकार से मुसीबतें खड़ी करती हैं ।

105. मूर्ख - गुण

मूर्खत्वं हि सखे ! ममापि रूचितं तस्मिन् यदष्टौ गुणाः ।
निश्चिन्तौ[१] बहुभोजनो[२] ऽत्रपमाना[३] नक्तं दिवा शायकैः[४] ॥
कार्याकार्य विचारणान्धबधिरो[५] मानापमाने समः[६] ।
प्रायेणामय वर्जितो[७] दृढ वपु[८] मूर्खः सुखं जीवति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 488]
— ***उत्तराध्ययन सूत्र सटीक 3 अध्ययन***

हे सखे ! जिस मूर्ख में ये आठ गुण हैं, वे मुझे भी अच्छे लगते हैं। १. निश्चिन्त २. अतिभोजी ३. अत्रपमान (निर्लज्ज) ४. रात-दिन शयन करनेवाला ५. कार्य-अकार्य की विचारणा में अंधा और बहरा ६. मान-अपमान में समान ७. निरोग और ८. मजबूत शरीर — ये आठ गुण जिसमें हैं, वह मूर्ख सुखपूर्वक जीता है।

106. सफल - जीवन

नानाशास्त्र सुभाषितामृतरसैः श्रोत्रोत्सवं कुर्वताम्,
येषां यान्ति दिनानि पण्डितजन व्यायामखिन्नात्मनाम्।
तेषां जन्म च जीवितं च सफलं तै रैव भूर्भूषिता,
शेषै किं पशुवद्विवेक रहितै र्भूभार भूतैर्नरैः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 488]
— ***उत्तराध्ययन सटीक 3 अध्ययन***

नानाशास्त्रों के सुभाषित अमृत रस से जो अपने कानों को सार्थक कर रहे हैं तथा जो विद्वज्जनों के साथ निरन्तर शास्त्रों के व्यायाम से स्वयं को थकाते हुए अपने दिन व्यतीत करते हैं, उन्हीं महापुरूषों का जीवन सफल है तथा उन्हीं से यह धरा सुशोभित है। शेष नर तो पशुवत विवेकरहित मात्र भूमि के भार हेतु ही विचरण करते हैं।

107. मोह मूढ़

असंकियाइं संकंति, संकियाइं असंकिणो।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 491]
— ***सूत्रकृतांग 1/1/2/6***

मोह मूढ़ मनुष्य को जहाँ वस्तुतः भय की आशंका है, वहाँ तो भय की आशंका करते नहीं है और जहाँ भय की आशंका जैसा कुछ नहीं है, वहाँ भय की आशंका करते हैं।

108. अन्धों का भटकाव

अंधो अंधं पहंणितो, दूरमद्धाण गच्छति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 492]

— *सूत्रकृतांग 1/1/2/19*

अंधा, अंधे का पथप्रदर्शक बनता है, तो वह अभीष्ट मार्ग से दूर भटक जाता है ।

109. अनुशासन

अप्पणो य परं णालं कुतो अण्णेऽणु सासिउं ?

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 492]

— *सूत्रकृतांग 1/1/2/17*

जो अपने पर अनुशासन नहीं रख सकता, वह दूसरों पर अनुशासन कैसे रख सकता है ?

110. पिंजरे का पक्षी

एवं तक्काए साहेंता धम्माऽधम्मे अकोविया ।
दुक्खं ते नाइ तुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 493]

— *सूत्रकृतांग 1/1/2/22*

जो धर्म और अधर्म से सवर्था अनजान व्यक्ति केवल कल्पित तर्कों के आधार पर ही अपने मंतव्य का प्रतिपादन करते हैं, वे अपने कर्म-बन्धन को तोड़ नहीं सकते जैसे कि पक्षी पिंजरे को नहीं तोड़ पाता है ।

111. दुराग्रह-पाश

सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वइं ।
जे उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 493]

— *सूत्रकृतांग 1/1/2/23*

अपने - अपने मत की प्रशंसा करते हुए और दूसरे के वचन की निंदा करते हुए जो मतवादीजन उस विषय में अपना पाण्डित्य प्रकट करते हैं, वे जन्म - मरणादि रूप चातुर्गतिक संसार में दृढ़ता से बंधे - जकड़ें रहते हैं ।

112. भाव-वासित हृदय

मैत्र्या सर्वेषु सत्त्वेषु, प्रमोदेन गुणाधिके ।
मध्यस्थेष्वविनीतेषु, कृपया दुःखितेषु च ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 496]
– **एवं** भाग 2 पृ. 503
– *प्रवचनसारोद्धार 67 द्वार*

समग्र जीवसृष्टि के प्रति मैत्री भाव बनाए रखना, अपने से अधिक गुणीजनों के प्रति प्रमोदभाव रखना, अविनीत-उद्धत लोगों पर मध्यस्थ-उपेक्षा भाव रखना और दु.खी लोगों के प्रति करूणाभाव बनाए रखना चाहिए ।

113. आत्मवत् - स्वरूप

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 502-780]
– **एवं** [भाग 6 पृ. 747]
– *भगवद्गीता 2/23*

इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है और न हवा सुखा सकती है ।

114. आत्म-स्वरूप

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय-मविकार्योऽयमुच्यते ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 502]
– **एवं** [भाग 6 पृ. 747]
– *भगवद्गीता 2/24*

यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, विकार रहित है, यह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है ।

115. अर्थ : दुःखद

अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे ।
आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थं दुःखकारणम् ॥
(पाठान्तरम् – धिगर्थोऽनर्थ भाजनम् ॥)

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 506-803]
– ***स्थानांग सूत्र सटीक*** *3/3*
– ***पञ्चतन्त्र*** *2/124*

धन के कमाने में दुःख, कमाये हुए धन की रक्षा में दु.ख, उसके नाश में दुःख और खर्च में दुःख ! अत. ऐसे दुःख के कारण रूप धन को धिक्कार है । इससे कष्ट ही कष्ट है ।

116. धर्म - अर्थ - कामः अविरोधी

जिण वयणम्मि परिणए, अवत्थविहि अणु ठाणओ धम्मो ।
सच्छा ऽ सयप्पयोगा, अत्थो वीसंभओ कामो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 507]
– ***दशवैकालिक निर्युक्ति 264***

अपनी-अपनी भूमिका के योग्य विहित अनुष्ठान रूप धर्म, स्वच्छ आशय से प्रयुक्त अर्थ, मर्यादानुकूल वैवाहिक नियंत्रण से स्वीकृत काम- जिनवाणी के अनुसार ये परस्पर अविरोधी है ।

117. धर्म - अर्थ - काम अविसंवादी

धम्मो अत्थो कामो भिन्ने ते पिंडिया पडिसवत्ता ।
जिणवयण उत्तिन्ना, अवसत्ता होंति नायव्वा ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 507]
– ***दशवैकालिक निर्युक्ति 262***

धर्म, अर्थ और काम को भले ही अन्य कोई परस्पर विरोधी मानते हो, किन्तु जिनवाणी के अनुसार तो वे कुशल अनुष्ठान में अवतरित होने के कारण परस्पर अविरोधी है ।

118. धर्म-फल

धम्मस्स फलं मोक्खो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 507]

– *दशवैकालिक निर्युक्ति 265*

धर्म का फल मोक्ष है ।

119. सत्, सत्

अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ, नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 518]

– **भगवती 1/3/7 [1]**

अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत् ।

120. स्थिर-शाश्वत !

अथिरे पलोट्टति, नो थिरे पलोट्टति;
अथिरे भज्जति, नो थिरे भज्जति ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 518]

– *भगवती 1/9/28*

अस्थिर बदलता है, स्थिर नहीं बदलता । अस्थिर टूट जाता है, स्थिर नहीं टूटता ।

121. सत् - असत्

नासतो जायते भावो, ना भावो जायते सतः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 518]

– *भगवद्गीता 2/16*

जो असत् है, उसका कभी भाव [अस्तित्व] नहीं होता और जो सत् है; उसका कभी अभाव [अनस्तित्व] नहीं होता ।

122. चक्षुष्मान्

अदक्खुव दक्खुवाहितं सद्दहसु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 525]

— *सूत्रकृतांग 1/2/3/11*

नहीं देखनेवालों ! तुम देखनेवालों की बात पर विश्वास करके चलो ।

123. चौर्यकर्म

अदिण्णादाणं हर दह मरण भय कलुसतासण पर संतिकभेज्ज लोभमूलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 526]

— *प्रश्नव्याकरण 1/3/12*

यह अदत्तादान [चोरी] परधन, अपहरण, दहन, मृत्यु, भय, मलीनता [कलुषता] त्रास, रौद्र ध्यान और लोभ का मूल है ।

124. अनार्य कर्म

अदत्तादाणं................अकित्तिकरणं

अणज्जं................सदा साहु गरहणिज्जं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 526]

— **प्रश्नव्याकरण 1/3/9**

अदत्तादान [चोरी] अपयश करनेवाला अनार्य कर्म है । यह सभी भले आदमियों द्वारा सदैव निंदनीय है ।

125. चोर, निर्दयी

परदव्वहरा णरा णिरनुकंपा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 528]

— *प्रश्नव्याकरण 1/3/11*

परकीय द्रव्य का अपहरण करने वाले मनुष्य निर्दयी या दयाशून्य होते हैं ।

126. चौर्य-कर्म विपाक

अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलिता परस्सदव्वेहिं जे अविरया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 533]

— ***प्रश्न व्याकरण 1/3/12***

जो पराये द्रव्यों-पदार्थों से विरत नहीं हुए हैं अर्थात् जिन्होंने चौर्य कर्म का परित्याग नहीं किया हैं वे अत्यन्त और विपुल सैकड़ों दु:खों की आग में जलते रहते हैं ।

127. अदत्तभोजी

अणणुण्ण विय पाण भोयण भोई........
से णिग्गंथे अदिण्णं भुंजेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 541]

— ***आचारांग 2/3/15***

जो गुरुजनों की अनुमति के बिना प्रिय पदार्थ का भोजन करता है, वह अदत्तभोजी है; अर्थात् एक प्रकार से चोरी का अन्न खाता है ।

128. अदत्त त्याग

अणुन्न वियगेण्हियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 542]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

दूसरे की कोई भी चीज हो, आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए ।

129. अस्तेय - अनाराधक

सया अप्पमाण भोती सततं अणुबद्धवेरेय तिव्वरोसी,
से तारिसए नाराहए वयमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 542]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

सदा मर्यादा से अधिक भोजन करनेवाला, वैरानुबंधी वैर रखनेवाला और सदा रोष रखनेवाला व्यक्ति अस्तेयव्रत का आराधक नहीं होता ।

130. असंविभागी कौन ?

असंविभागी, असंगहरूती........अप्पमाण
भोई........सेतारिसए नाराहए वयमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 542]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

जो असंविभागी है — प्राप्त सामग्री का ठीक तरह वितरण नहीं करता है, असंग्रह रुचि है — साथियों के लिए समय पर उचित सामग्री का संग्रह कर रखने में रुचि नहीं रखता है, अप्रमाणभोजी है — मर्यादा से अधिक भोजन करनेवाला 'पेटू' है, वह अस्तेयव्रत की सम्यक् आराधना नहीं कर सकता।

131. अपरिग्रह

अपरिग्गह संवुडेणं लोगम्मि विहरियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 542]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/8/26***

अपने को अपरिग्रह भावना से संवृत्त कर लोक में विचरण करना चाहिए ।

132. संविभागी कौन ?

संविभाग सीले संगहो वग्गह कुसले, सेतारिसे आराहते वयमिणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 543]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/8/26***

जो संविभागशील है - प्राप्त सामग्री का ठीक तरह वितरण करता है, संग्रह और उपग्रह में कुशल है — साथियों के लिए यथावसर भोजनादि सामग्री जुटाने में दक्ष है, वही अस्तेयव्रत की सम्यक् आराधना कर सकता है ।

133. चल, अकेला !

एगे चरेज्ज धम्मं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 544]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

भले ही कोई साथ न दे, अकेले ही सद्धर्म का आचरण करना चाहिए ।

134. विनय - तप

विणओ वि तवो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 545]

– ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

विनय अपने आप में एक तप है ।

135. साधर्मिक - विनय

साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 545]

– ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

साधर्मिकों के प्रति विनय का व्यवहार करें ।

136. तप धर्म

तवो वि धम्मो ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 545]

– ***प्रश्न व्याकरण 2/8/26***

तप भी धर्म है ।

137. ईख का फूल

सामन्नमणु चरंत-स्स कसाया जस्स उक्कडा होंति ।
मन्नामि उच्छु पुप्फं च निप्फलं तस्स सामन्नं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 571]
एवं [भाग 5 पृ. 382]

– ***दशवैकालिक निर्युक्ति 301***

श्रमण धर्म का अनुचरण करते हुए भी जिसके क्रोधादि कषाय उत्कट हैं, तो उसका श्रमणत्व वैसा ही निरर्थक है जैसाकि ईख का फूल ।

138. कलह - हानि

अट्ठे परिहायती बहू, अहिगरणं न करेज्ज पंडिए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 571]

— ***सूत्रकृतांग 1/2/2/19***

बुद्धिमान् को कभी किसी से कलह नहीं करना चाहिए। कलह से बहुत बड़ी हानि होती है।

139. कषायी असंयमी

कसाय सहितो न संजओ होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 574]

— ***बृहत्कल्पभाष्य 2712***

कषाय रखनेवाला संयमी नहीं होता।

140. वात्सल्य - महत्ता

अवच्छलत्ते य दंसण हाणी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 574]

— ***बृहत्कल्प भाष्य 2711***

परस्पर वात्सल्य भाव की कमी होने पर सम्यग्दर्शन की हानि होती है।

141. वीतरागता

अकसायं खु चरित्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 574]

— ***बृहत्कल्प भाष्य 2712***

अकषाय [वीतरागता] ही चारित्र है।

142. कषाय चारित्र हानि

जह कोहाई विवड्ढी, तह हाणी होई चरणे वि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 574]

— ***निशीथ भाष्य 2790***

— ***बृहत्कल्प भाष्य 2711***

ज्यों - ज्यों क्रोधादि कषाय की वृद्धि होती है त्यों - त्यों चारित्र की हानि होती है ।

143. किञ्चित् कषाय से चारित्र - हनन

जं अज्जियं चरित्तं, देसूणाए वि पुव्व कोडिए ।
तं पिय कसायमित्तो, नासेइ नरो मुहुत्तेणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 575]
— *तित्थोगाली पइण्णय 1201*
— *निशीथ भाष्य 2793*
— *बृहत्कल्प भाष्य 2715*

देशो कोटि पूर्व की साधना के द्वारा जो चारित्र अर्जित किया है, वह अन्तर्मुहूर्त भर के प्रज्ज्वलित कषाय से नष्ट हो जाता है ।

144. शीतगृह - सम आचार्य

रागद्दोस विमुक्को, सीयघर समो आयरिओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ 575]
— *निशीथ भाष्य 2794*

राग-द्वेष से रहित आचार्य भगवन्त शीतगृह [सब ऋतुओं में एक समान सुखप्रद] भवन के समान है ।

145. अकषाय से मोक्ष

अकसायं निव्वाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 575]
— *आगमीय सूक्तावलि पृ. 72,*
बृहत्कल्पलोकोक्तयः (76-2-10)

अकषाय [वीतरागता] ही निर्वाण है ।

146. घोर अज्ञानी

तमतिमिर पडल भूतो पावं चिंतेइ दीह संसारी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 581]
— *निशीथ भाष्य 2847*

पूंजीभूत अंधकार के समान मलिन चित्तवाला दीर्घ संसारी जब देखो तब पाप का ही विचार करता रहता है।

147. साधु हृदय नवनीत - सम

नवणीय तुल्ल हियया साहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 585]

— *व्यवहार भाष्य 7/215*

साधुजनों का हृदय नवनीत [मक्खन] के समान कोमल होता है।

148. अप्रतिबद्ध - विचरण

असज्जमाणे अप्पडिबद्धेयावि विहरइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 594]

— *उत्तराध्ययन 29/32*

जो अनासक्त है, वह सर्वत्र निर्द्वन्द्व भाव से विचरण करता है।

149. नि:संगभाव - श्रेष्ठतम

निस्संगत्तेणं जीवे एगे, एगग्ग चित्ते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 594]

— *उत्तराध्ययन 29/32*

नि:संगभाव से चित्त की एकाग्रता आती है।

150. निर्द्वन्द्वता से नि:संग

अप्पडिबद्धयाएणं, निस्संगत्तं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 594]

— *उत्तराध्ययन 29/32*

अप्रतिबद्धता से नि.संग भाव आता है।

151. अप्रमत्त

अप्पमत्ते समाहिते झाती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 597]

— *आचारांग 1/9/2/67*

श्रमण इन्द्रियों को नियन्त्रित कर समाहित अवस्था में ध्यान करे ।

152. आचार्य-शुश्रूषा

सुस्सूसए आयरिएऽप्पमत्तो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 597]

— *दशवैकालिक 9/1/17*

शिष्य अप्रमादी होता हुआ आचार्य भ. की सेवा-शुश्रूषा करें ।

153. शुभ चिन्तन

अकुसलमण निरोहो, कुसलमण उदीरणं वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 597]

— *एवं* [भाग 6 पृ. 1154]

— *व्यवहार भाष्य पीठिका 77*

मन को अकुशल = अशुभ विचारों से रोकना चाहिए और कुशल - शुभविचारों के लिए प्रेरित करना चाहिए ।

154. अप्रमत्तभाव

अप्पमत्ते जए निच्चं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 597]

— *दशवैकालिक 8/16*

सदा अप्रमत्त भाव से साधना में प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

155. पराक्रम कहाँ ?

अप्पमत्ते सया परिक्कमेज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 597]

— *आचारांग 1/4/1/133*

धीर साधक को अप्रमत्त होकर सदा अहिंसादि रूप धर्म में पराक्रम करना चाहिए ।

156. ज्ञानी मुनि

अणण्ण परमं णाणी णो पमादे कयाइ वि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *आचारांग 1/3/3/123*

ज्ञानी मुनि अनन्य परम [सर्वोच्च परम सत्य, संयम] के प्रति कभी भी प्रमाद का सेवन न करे।

157. आत्मगुप्त साधक

आत गुत्ते सदा वीरे जाता माताए जावए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *आचारांग 1/3/3/123*

साधक सदा आत्मगुप्त वीर अर्थात् पराक्रमी रहे। वह अपनी संयम-यात्रा का निर्वाह परिमित आहार से करे।

158. रोगी सेवा

गिलाणस्स अगिलाते वेयावच्चं करणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *स्थानांग 8/8/649*

रोगी की सेवा के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

159. अश्रुत धर्म श्रवण

असुताणं धम्माणं सम्मं सुणणताते अब्भुट्ठेतव्वं भवति।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *स्थानांग 8/8/649*

अभी तक नहीं सुने हुए धर्म को सुनने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

160. अप्रमाद

अलं कुसलस्स पमादेन।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *आचारांग 1/2/4/85*

बुद्धिमान् साधक को अपनी साधना में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

161. आचरण-तत्परता

सुयाता धम्माणं ओगिण्णताते उवधारणयाते अब्भुट्ठेतव्वं भवति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *स्थानांग 8/8/649*

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए ।

162. असहाय - आश्रय

असंगिहीत परितणास्स संगिण्हणताते अब्भुट्ठेयव्वं भवति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 598]

— *स्थानांग 8/8/649*

जो अनाश्रित एवं असहाय है — उन्हें सहयोग तथा आश्रय देने में सदा तत्पर रहना चाहिए ।

163. अन्तःशोधन

शुद्ध्यल्लोके यथा रत्नं जात्यं काञ्चनमेववा ।
गुणैः संयुज्यते चित्रैस्तद्वदात्माऽपि दृश्यताम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 607]

— *योगबिन्दु 181*

लोक में जैसे शुद्ध किया हुआ संमार्जित - संशोधित या परिष्कृत किया हुआ उच्च जाति का रत्न या स्वर्ण विभिन्न गुणों से समासयुक्त हो जाता है, शोधण तथा परिष्कार से उसमें अनेक विशेषताएँ आ जाती हैं, उसी प्रकार जीव भी अन्त:शोधन के क्रम में सदनुष्ठान द्वारा अनेक उच्च गुण संयुक्त हो जाता है । इसपर चिन्तन पर्यालोचन करें ।

164. पात्रता

. अनीदृशस्य च यथा न भोगसुखमुत्तमम् ।
अशान्तादेस्तथा शुद्धं नानुष्ठानं कदाचन ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 608]
— *योगबिन्दु 188*

जो पुरुष धनाढ्य, सुन्दर एवं युवा नहीं है वह उत्तम भोगों का आनन्द नहीं ले सकता, उसीतरह जो व्यक्ति अशान्त तथा निम्न है वह शुद्ध क्रियानुष्ठान - धर्मानुसंगत श्रेष्ठ कार्य नहीं कर सकता।

165. कर्मः दग्ध-बीज

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 610]
— एवं भाग 3 पृ. 334
— *तत्त्वार्थाधिगम भाष्य 10/7 एवं*
— *स्याद्वाद मंजरी पृ. 329*

जिसप्रकार बीज के जल जाने पर बीज से अंकुर पैदा नहीं होता, उसीप्रकार कर्म-बीज के जल जाने पर संसाररूपी अंकुर पैदा नहीं होता।

166. अब्रह्मचर्य

अबंभं........जरामरण रोग सोग बहुलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 675]
— *प्रश्न व्याकरण 1/4/13*

अब्रह्मचर्य, वृद्धावस्था-बुढ़ापा, मृत्यु, रोग और शोक की प्रचुरता-वाला है।

167. अब्रह्मचर्य विघ्न

अबंभं च........तव संजम बंभचेर विग्घं भेयायतण बहु पमादमूलं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 675]
— *प्रश्न व्याकरण 1/4/13*

अब्रह्मचर्य तपश्चर्या, संयम और ब्रह्मचर्य के लिए विघ्न स्वरूप है और सदाचार - सम्यक् चारित्र के विनाशक प्रमाद का मूल है।

168. कामभोग - अतृप्ति

उवणमंति मरण धम्मं अवितत्ता कामाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 677-678-679]

— *प्रश्न व्याकरण 1/4/15*

अच्छे से अच्छे सुखोपभोग करनेवाले भी अन्त में काम-भोगों से अतृप्त रहकर ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं ।

169. इह परत्र नाश

इहलोए वि ताव नट्ठा, पर लोए वि नट्ठा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 679]

— *प्रश्न व्याकरण 1/4/16*

अब्रह्म सेवन करनेवाले अर्थात् विषयासक्त व्यक्ति इस लोक में नष्ट होते हैं और परलोक में भी ।

170. मित्र भी शत्रु

मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 679]

— *प्रश्न व्याकरण 1/4/16*

मैथुनासक्ति से मित्र शीघ्र ही शत्रु बन जाते हैं ।

171. सम्यग्दर्शन विहीन

जे अबुद्धा महाभागा, वीरा असम्मत्तं दंसिणो ।
असुद्धं तेसिं परक्कंतं, सफलं होइ सव्वसो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 684]

— एवं भाग 5 पृ. 60

— *सूत्रकृतांग 1/8/22*

सम्यक्दर्शन से रहित परमार्थ को न जाननेवाले ऐसे लोक विश्रुत यशस्वी वीर पुरुषों का तपदान, अध्ययन, यम-नियम आदि में किया गया पराक्रम [वीर्य] अशुद्ध है, वे सभी तरह से वृद्धि अर्थात् सम्पूर्ण पराक्रम में निष्फल रहते हैं ।

172. अभ्यास - तद्रूपता

जं अब्भासइ जीवो, गुणं च दोसं च एत्थ जम्मम्मि ।
तं पावइ परलोए, तेण य अब्भास जोएण ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 691]

— ***श्री कुलक संग्रह - गुणानुराग कुलक 8***

इस संसार में जीव गुण या दोष जिसका परिशीलन करता है [पुन पुन. अभ्यास करता है], वह तद्रूप हो जाता है अर्थात् उसके अन्त.करण में वह संस्कार बैठ जाता है जिसका परिणाम भवान्तर में वह उसीको प्राप्त करता है। गुणग्राही पुरुष गुणी ही होता है और दोषग्राही पुरुष दोषी होता है।

173. अभ्यास से सर्व-सुलभ

अभ्यासेन क्रियाः सर्वाः, अभ्यासात् सकलाः कलाः ।
अभ्यासाद् ध्यान मौनादि, किमभ्यासस्य दुष्करम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ 691]

— धर्मसंग्रह सटीक 2 अधिकार

अभ्यास से सब क्रियाएँ, अभ्यास से सब कलाएँ और अभ्यास से ही ध्यान, मौन आदि होते हैं। संसार में ऐसी क्या बात है, जो अभ्यास से साध्य न हो ? अर्थात् अभ्यास से समस्त कार्य सिद्ध हो सकते हैं।

174. विनय

धम्मस्स मूलं विणयं वयन्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 696]

— ***बृहदावश्यक भाष्य 4441***

धर्म का मूल विनय कहा गया है।

175. संघ, संघ नहीं !

जहि णत्थि सारणा वारणा य पडिचोवायणा च गच्छम्मि ।
सो उ अगच्छो गच्छो संजम कामीण मोत्तव्वो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 699]

— बृहदावश्यक भाष्य 4464

जिस संघ [गच्छ] में न सारणा[1] है, न वारणा[2] है और न प्रतिचोदना[3] है; वह संघ, संघ नहीं है। अत: संयमाकांक्षी को उसे छोड़ देना चाहिए।

१. कर्तव्य की सूचना २. अकर्तव्य का निषेध ३. भूल होने पर कर्तव्य के लिए कठोरता के साथ शिक्षा देना।

176. अभयदान

य स्वभावात्सुखौषिभ्यो, भूतेभ्यो दीयते सदा।
अभयं दु:ख भीतेभ्योऽभयदानं तदुच्यते॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]

— ***गच्छाचार पयन्ना टीका 2 अधिकार***

स्वभाव से ही सुख के अभिलाषी एवं दु:खों से भयभीत जीवों को जो अभय दिया जाता है, वह 'अभयदान' कहलाता है।

177. प्राणी दया श्रेष्ठतम

सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञा यथोदिताः।
सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च, यत्कुर्यात् प्राणिनां दया॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]

— ***धर्मरत्न प्रकरण - 56***

सभी वेद, सभी यज्ञ और समस्त तीर्थाभिषेक जो कार्य नहीं कर सकते, वह कार्य प्राणियों की दया कर सकती है।

178. अनुपम - अभयदान

एकतः क्रतवः सर्वे, समग्रवर दक्षिणा।
एक तो भयभीतस्य, प्राणिनः प्राणरक्षणम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]

— ***धर्मरत्न प्रकरण - 55***

एक ओर सारे यज्ञ हो और समग्र श्रेष्ठ दक्षिणा हो तथा एक ओर किसी भयभीत प्राणी के प्राणों की रक्षा हो; तो भी वे इसकी बराबरी नहीं कर सकते।

179. अभयदान श्रेष्ठ

दत्तमिष्टं तपस्तप्तं, तीर्थसेवा तथा श्रुतम् ।
सर्वाण्य भय दानस्य, कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]
— *धर्मरत्न प्रकरण - 54*

अन्य इष्ट वस्तुओं का दिया हुआ दान, की हुई तपश्चर्या, तीर्थसेवा, शास्त्र-श्रवण - ये सब अभयदान की सोलहवीं कला को प्राप्त नहीं कर सकते ।

180. जीवनदान

महतामपि दानानां, कालेन क्षीयते फलम् ।
भीता भय प्रदानस्य, क्षय एव न विद्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]
— *धर्मरत्न प्रकरण - 53*

दूसरे दानों से मनुष्य अस्थायी संतोष पा जाता है या कुछ देर के लिए उसका लाभ उठा सकता है; परन्तु अभयदान तो जिन्दगी का दान है ।

181. अभयदान परम धर्म

नहीं भूयस्तमो धर्मस्तस्मादन्योऽस्ति भूतले ।
प्राणीनां भयभीतानाम भयं यत्प्रदीयते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]
— *धर्मरत्न प्रकरण 51*

भयभीत प्राणियों को जो अभयदान दिया जाता है, उससे बढ़कर अन्य कोई धर्म इस भूमण्डल पर नहीं है ।

182. विरले अभयदान दाता

हेम धेनु धरादीनां दातारः सुलभाभुवि ।
दुर्लभ पुरुषोलोके, यः प्राणिष्वभयप्रदः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 706]

— *धर्मरत्न प्रकरण 52*

— *विक्रमचरित्र सप्तम सर्ग 95*

— *एवं मार्केण्डय पुराण*

सचमुच इस दुनिया में जमीन, सोना, अन्न और गायों का दान करनेवाले तो आसानी से मिल सकते हैं, लेकिन भयभीत प्राणियों की प्राण-रक्षा करके उन्हें अभयदान देने वाले व्यक्ति विरले ही मिलते हैं।

183. एकल अशोभनीय

पद्मावती च समुवाच विना वधूटीं,
शोभा न काचन नरस्य भवत्यवश्यम् ।
नो केवलस्य पुरुषस्य करोति कोऽपि,
विश्वासमेव विट एव भवेद्भार्यः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 709]

— *कल्प सुबोधिका टीका 1 क्षण*

वस्तुत. बिना स्त्री के पुरुष कभी शोभा नहीं पाता है और अकेले पुरुष पर न कोई विश्वास करता है। पत्नी रहित पुरुष विट ही हो जाता है।

184. अनुद्विग्न सुधी

अरइं आउट्टे से मेधावी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 753]

— आचारांग 1/2/2/29

बुद्धिमान् पुरुष चित्त की व्याकुलता से निवृत्त होता है।

185. धर्मविहार

धम्मारामे निरारंभे उवसंते मुणी चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 754]

— *उत्तराध्ययन 2/17*

हिंसादि से विरत और उपशान्त होकर मुनि धर्मरूपी वाटिका में विचरण करे।

186. लड़े सिपाही नाम सरदार का

क्लिश्यन्ते केवलं स्थूलाः, सुधीस्तु फलमश्नुते ।
दन्ता दलन्ति कष्टेन, जिह्वया गिलति लीलया ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 762]
– ***कल्प सुबोधिका सटीक 7 क्षण***

स्थूल बुद्धिवाले केवल क्लेश पाते हैं और बुद्धिमान् तो फल पाते हैं । जैसे – दन्तपंक्ति तो मात्र चबाने का कार्य करती है, और स्वाद तो जीभ ही लेती है ।

187. अलाभ - परिषह

अज्जेवाहं न लब्भामि, अविलाभो सुए सिया ।
जो एवं पडि संचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 772]
– ***उत्तराध्ययन 2/33***

मुझे आज आहार नहीं मिला है, तो संभवत: कल प्राप्त हो जाएगा । जो साधु आहार प्राप्त न होने पर इसप्रकार विचार करके दीनभाव नहीं लाता, उसे अलाभ परिषह नहीं सताता है ।

188. उत्तमतप

अलाभो मे परमं तपः ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 772]
– ***पञ्चसंग्रह सटीक 4 द्वार***
– ***एवं आवश्यक बृहद्वृत्ति 4 अध्ययन***

अलाभ [किसी वस्तु का प्राप्त नहीं होना] मेरे लिए श्रेष्ठ तप है ।

189. क्षुधा-परिषह

लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज संजए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 772]
– ***उत्तराध्ययन 2/30***

आहार मिले अथवा नहीं मिले तो भी बुद्धिमान् साधक खेद नहीं करे ।

190. कैसा सत्य ?

अलिअं न भासि अव्वं, अत्थि हु सच्चं पिजं न वत्तव्वं ।
सच्चं पि तं न सच्चं, जं पर पीडाकरं वयणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 773]
— *धर्मसंग्रह 2 अधिकार पृ. 59*

झूठ नहीं बोलना चाहिए। ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए जो परपीड़ाकारक हो और वह सत्य, सत्य भी नहीं है।

191. असत्य भाषण

दुग्गइ - विणिवाय विवड्ढणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 777 एवं 784]
— *प्रश्न व्याकरण 1/2/5*

असत्य भाषण से अध:पतन होता है।

192. असत्य स्वरूप

अलियंणियडिसाति जोयबहुलं नीयजण निसेवियं ।
निस्संसं अपच्चयकारकं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 777-784]
— *प्रश्न व्याकरण 1/2/5*

यह झूठ धूर्तता और अविश्वास की प्रचुरतावाला है। नीच लोग ही इसका आचरण करते हैं। यह नृशंस - क्रूरता से परिपूर्ण है और विश्वसनीयता का विघातक है।

193. लोभी - प्रवृत्ति

निक्खेवे अवहरंति, परस्स अत्थम्मि गढियगिद्धा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 778]
— *प्रश्न व्याकरण 1/2/6*

पराये धन में अत्यन्त आसक्त मृषावादी लोभी धरोहर को हड़प जाते हैं।

194. भवितव्यता

न हि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन ।
करतलगतमपि नश्यंति, यस्य तु भवितव्यता नास्ति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 780]
— ***प्रश्न व्याकरण सटीक 2 आश्रवद्वार***

यदि भवितव्यता नहीं है तो वह नहीं होता और जो होनहार है वह बिना प्रयास के भी हो जाता है। जिसकी भवितव्यता नहीं है वह हथेली में रहा हुआ भी चला जाता है।

195. सर्वव्यापी ईश्वर

जले विष्णुः, स्थले विष्णुः विष्णुपर्वत मस्तके ।
ज्वाल माला कुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 780]
- ***सुभाषित श्लोक संग्रह 406***

जल में विष्णु हैं। स्थल में विष्णु हैं। पर्वत के शिखर में विष्णु हैं। आग में, हवा में विष्णु हैं और हरी वनस्पति में भी विष्णु व्याप्त हैं। अत यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय हैं।

196. परमात्मा

एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जल चन्द्रवत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 780]
— ***ब्रह्मबिन्दूपनिषद 12***

एक परमात्मा ही प्रत्येक जीव में स्थित है, जो जल में चंद्रमा की तरह एक या अनेक रूपों में दिखाई देता है।

197. विराट् ब्रह्म !

पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 780]

— *ऋग्वेद पुरुष सूक्त 10/90/2*

वे सब ब्रह्म हैं, जो उत्पन्न हैं अथवा भविष्य में उत्पन्न होंगे ।

198. मिथ्याशयी मानव कैसे ?

अलिया हिंसंति संनिविट्ठा असंत गुणुदीरकाय संतगुण नासकाय ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 781]

— *प्रश्न व्याकरण 1/2/6*

मिथ्या आशयवाले असत्यभाषी लोग गुण हीन के लिए गुणों का वखाण करते हैं और गुणी के वास्तविक गुणों का अपलाप करते हैं ।

199. असत्य विपाक

अलिय वयणं........अयसकरं वेरकरगं........मण संकिलेस वियरणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 784]

— *प्रश्न व्याकरण 1/2/5*

असत्य वचन बोलने से बदनामी होती है, परस्पर वैर बढ़ता है और मन में संक्लेश की वृद्धि होती है ।

200. षट्-दुर्वचन

**इमाइं छ अवतणाइं । तंजहा - अलिय वयणे,
हीलिय वयणे, खिंसित वयणे, फरूस वयणे,
गारत्थिय वयणे, विउ सवितं वा पुणो उदीरित्ते ।**

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 795]

— *स्थानांग 6/6/527*

छह तरह के वचन नहीं बोलना चाहिए - असत्य वचन, तिरस्कार युक्त वचन, झिड़कते हुए वचन, कठोर वचन, साधारण मनुष्यों की तरह अविचारपूर्ण वचन और शान्त हुए कलह को फिर से भड़कानेवाले वचन ।

201. धिग् ! धनम्

धिग् द्रव्यं दुःखवर्धनम् ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 803]

— *पञ्चतन्त्र 2/124*

दुःख की अभिवृद्धि करनेवाले ऐसे धन को धिक्कार है।

202. महासत्त्वशील मनीषी

अपाय बहुलं पापं, ये परित्यज्य संसृताः ।
तपोवनं महासत्त्वा - स्ते धन्यास्ते मनस्विनः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 803]

— *दशवैकालिक सटीक 1 अ॰*

जो महासत्त्वशील पुरुष बहुत सारे पाप को दूरकर तपोवन में चले गए हैं, वे मनीषी हैं और धन्य हैं, कृतकृत्य हैं।

203. अध्ययन अयोग्य

चत्तारि अवातणिज्जा पन्नता, तंजहा - अविणीवीई पडिबद्धे, अविओ सवित पाहुडे मायी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 804]

— *स्थानांग 4/4/3/326*

चार व्यक्ति शास्त्राध्ययन के योग्य नहीं है — अविनीत, चटोरा, झगड़ालू और धूर्त।

204. अविनीत

अह चोद्दसहिं ठाणेहिं वट्टमाणे उ संजए ।
अविणीए वुच्चई सोऽनिव्वाणं च गच्छई ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 806]

— *उत्तराध्ययन 11/6*

चौदह प्रकार से वर्तन करने वाला संयमी अविनीत कहलाता है और वह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता।

205. अविनीत कौन ?

असंविभागी अचियत्ते अविणीए त्ति वुच्चई ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 806]

— *उत्तराध्ययन 11/9*

जो असंविभागी है, प्राप्त सामग्री को साथियों में बाँटता नहीं है और परस्पर प्रेमभाव नहीं रखता है, वह अविनीत कहा जाता है।

206. मा प्रमाद

असंखयं जीविय मा पमायए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 819]

— *उत्तराध्ययन 4/1*

जीवन का धागा टूट जाने पर पुन जुड़ नहीं सकता, वह असंस्कृत है; इसलिए प्रमाद मत करो ।

207. वृद्धावस्था रक्षक नहीं

जरोवणीयस्सहु नत्थि ताणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 819]

— *उत्तराध्ययन 4/1*

बुढ़ापा आने पर कोई भी त्राण नहीं देता ।

208. एकरूपता

यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः ।
धन्यास्ते त्रितये येषां, विसंवादो न विद्यते ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 835]

— *धर्मरत्न प्रकरण 1 अधि. पृ. 11*

जैसा चित्त वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसी क्रि या (आचरण) इन तीनों की जिनमें एकरूपता हैं, वे मानव धन्य हैं।

209. मायावी, अविश्वसनीय

मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति किंचिदपराधम् ।
सर्प इवाविश्वास्यो, भवति तथाप्यात्मदोषहतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 835]

— *प्रशमति प्रकरण 28*

मायावी पुरु ष यद्यपि कोई अपराध नहीं करता है, तथापि अपने माया दोष के कारण सर्प के समान वह लोक में अविश्वसनीय ही रहता है।

210. श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण

वरं प्राण परित्यागो, मा मान परिखण्डना ।
प्राण त्यागे क्षणं दुःखं, मान भङ्गे दिने दिने ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 836]
— ***विक्रमचरित्र - 1/1***
चक्रदेव चरित एवं चाणक्य नीति

श्रेष्ठ पुरुष प्राण त्याग कर सकते हैं, किन्तु मानभंग नहीं कर सकते हैं; क्योंकि मृत्यु से क्षणमात्र ही कष्ट होता है, परन्तु मानभङ्ग से जीवन भर कष्ट होता है ।

211. मिथ्यात्व

न मिथ्यात्व समः शत्रु - र्न मिथ्यात्व समं विषम् ।
न मिथ्यात्व समो रोगो, न मिथ्यात्व समं तपः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 840]
— ***धर्मसंग्रह 1 अधिकार, पृ. 20***

मिथ्यात्व के समान कोई शत्रु नहीं, मिथ्यात्व से बढ़कर कोई जहर नहीं; मिथ्यात्व के समान कोई रोग नहीं और मिथ्यात्व के समान कोई अंधकार नहीं !

212. मिथ्यात्व - भयंकर

द्विषद् विषतमो रोगै र्दुःखमेकत्र दीयते ।
मिथ्यात्वेन दुरन्तेन, जन्तो र्जन्मनि जन्मनि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 840]
— ***धर्मसंग्रह 1 अधिकार पृ. 20***

जहर, अंधकार और रोग एक बार ही दुःख देता है, किन्तु भयंकर मिथ्यात्व तो प्राणी को जन्म-जन्मान्तर में कष्ट देता है ।

213. मिथ्यात्व-जीवन

वरं ज्वाला कुले क्षिप्तो, देहिनाऽत्मा हुताशने ।
न तु मिथ्यात्व संयुक्तं, जीवितव्यं कदाचन ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 840]
— ***धर्मसंग्रह 1 अधिकार***

देहधारी आत्मा का अग्नि की ज्वाला में कूदना श्रेष्ठ है, परन्तु मिथ्यात्व युक्त जीवन जीना कभी भी श्रेयस्कर नहीं है ।

214. पाप - हेतु

हिंसाऽनृतादयः पञ्च, तत्त्वाश्रद्धानमेव च ।
क्रोधादयश्च चत्वारः इति पापस्य हेतवः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 840]
— ***धर्मबिन्दु 2/63***

हिंसा, मृषा, चोरी, मैथुन व परिग्रह — ये पाँच तत्त्व में अश्रद्धा, तथा क्रोध-मान-माया और लोभ (ये चार कषाय) ये कुल दस पाप के कारण हैं ।

215. कौन शरण ?

इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते, यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् ।
अहो तदन्तकातङ्के कःशरण्य शरीरिणाम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 844]
— ***योगशास्त्र 4/61***

अरे ! जब इन्द्र, उपेन्द्र वासुदेव आदि भी मृत्यु के अधीन हैं, तो मृत्यु-भय के आने पर दीन-हीन, सामान्य मनुष्यों को कौन शरण दे सकता है ?

216. अशरण - चिन्तन

पितुर्मातुः स्वसुर्भ्रातु - स्तनयानां च पश्यताम् ।
अत्राणो नीयते जन्तुः कर्मभिर्यमसद्मनि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 844]
— ***धर्मसंग्रह सटीक 3 अधिकार***
— ***योगशास्त्र 4/62***

माता-पिता, भ्राता-भगिनी और पुत्रादि के देखते-ही-देखते शरण-हीन मनुष्य को स्वयं के कर्म यम के घर खींच ले जाते हैं।

217. मूढ़ मानव !

शोचन्ति स्वजनानऽन्तं नीयमानान् स्वकर्मभिः ।
नेष्यमाणं न शोचन्ति, नात्मानं मूढबुद्धयः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 844]
— ***धर्मसंग्रह सटीक 3 अधिकार***
— ***योगशास्त्र 4/63***

अपने ही कर्मों से मृत्यु पाते स्वजनों को देखकर मूर्ख मनुष्य अफसोस करते हैं, परन्तु वे कर्म उन्हें भी कुछ ही समय में ले जाएँगे; इस बात का उन्हें बिल्कुल दुःख नहीं होता।

218. अशरण - अनुप्रेक्षा

संसारे दुःखदावाग्नि - ज्वलद् ज्वाला करालिते ।
वने मृगार्भ कस्येव, शरणं नास्ति देहिनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 844]
— ***धर्मसंग्रह सटीक 3 अधिकार***
— ***योगशास्त्र 4/64***

जैसे दावानल की सुलगती ज्वालाओं से युक्त भयंकर वन में हिरन के बच्चों का कोई शरण नहीं है वैसे ही दुःखरूपी दावाग्नि की सुलगती ज्वालाओं से भयंकर इस संसार में (धर्म के अतिरिक्त) प्राणिओं का कोई शरण नहीं है।

219. जिनवचन शरण

जन्मजरामरणभयै - रभिद्रुते व्याधिवेदनाग्रस्ते ।
जिनवरवचनादन्य-त्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 844]
एवं [भाग 2 पृ. 178]
— ***प्रशमरति प्रकरण 152***

जन्म, जरा, मरण और भय से परेशान हुए तथा व्याधि - वेदना से ग्रसित मानव को जिन-वचन के अतिरिक्त इस संसार में कहीं पर भी शरण नहीं है।

220. अशाश्वत् क्या ?

अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणि दिवि चेह च ।
देवसुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानि च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 845]
- ***सूत्रकृतांग सूत्र सटीक* 1/8**

देव दानव और मानव के इस लोक व परलोक संबंधी समस्त सुख-वैभव अशाश्वत् हैं।

221. अपवित्र काया

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थि - मज्जाशुक्रान्त्रवर्चसाम् ।
अशुचीनां पदं कायः, शुचित्वं तस्य तत्कुतः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 850]
— ***योगशास्त्र - 4/72***

यह काया रस, रूधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, आँतें और विष्ठ आदि अपवित्र वस्तुओं की घररूप हैं। अत: उसमें पवित्रता कहाँ से हो सकती हैं।

222. महामोह का प्रदर्शन

नवस्त्रोतः स्त्रवद्विस्त्र - रसनिस्यन्दपिच्छिले ।
देहे शौच संकल्पो, महन्मोह विजृम्भितम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 850]
— ***योगशास्त्र 4/70***

देह के नौ द्वारों से सतत निकलते हुए दुर्गन्धित रस और उसके बहने से सने हुए गंदे शरीर में भी पवित्रता की कल्पना करना या अभिमान करना यह महामोह का प्रदर्शन है।

223. लोकधर्म विरुद्ध त्याग

लोकः खल्वाधारः सर्वेषां ब्रह्मचारिणां यस्मात् ।
तस्माल्लोक विरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 867]
एवं [भाग 4 पृ. 2682]
– *प्रशमरति प्रकरण 131*
– *धर्मबिन्दु 1/46*

धर्म-मार्ग पर चलने वाले सभी का आधार लोक है। इसलिए जो लोक-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध हो, उसका त्याग करें।

224. अहिंसा, क्षेमंकरी

तत्थ पढमं अहिंसा, तस थावर सव्व भूय खेमकरी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 872]
– *प्रश्न व्याकरण 2/6/21*

अहिंसा - सत्यादि पाँचों में प्रथम अहिंसा त्रस और स्थावर (चर-अचर) सब प्राणियों का कुशल क्षेम करनेवाली है।

225. हिंसा - अर्थ

प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 872]
– *तत्त्वार्थ सूत्र 7/8*

प्रमत्त योग (प्रमाद पूर्वक) के द्वारा दूसरों के प्राणों का नाश करना हिंसा है।

226. अहिंसा

अहिंसा जा सा सदेव मणुया सुरस्स लोगस्स
भवति दीवो ताणं सरणं गती पइट्ठा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 872]
– *प्रश्न व्याकरण 2/6/21*

यह अहिंसा भगवती देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समूचे विश्व के लिए द्वीप/दीपक है, शरणदात्री है, गति है तथा समस्त गुणों और सुखों का आधार है।

227. शरणदात्री कौन ?

एसा भगवती अहिंसा.............भीयाणं विव सरणं।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 873]

– *प्रश्न व्याकरण 2/6/22*

यह भगवती अहिंसा भयभीतों का शरण है।

228. शुद्धि के पञ्चहेतु

सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिन्द्रियसंग्रहः
सर्वभूत दया शौचं, जलशौचं च पञ्चमम्

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 1 पृ. 873]
एवं [भाग 7 पृ. 1004 एवं 1165]

– *प्रश्न व्याकरण सूत्र सटीक 1 संवर द्वार*

– *चाणक्य राजनीति शास्त्र 3/42*
एवं स्कन्द पुराण, काशीखंड - 6

शौच (शुद्धि) के पाँच कारण हैं — सत्यशुद्धि, तपशुद्धि, इन्द्रिय - निग्रहशुद्धि, सब जीवों की दया और जलशुद्धि। प्रथम चार आत्म-शुद्धि के कारण हैं और पाँचवां जल शरीर-शुद्धि की अपेक्षा से है।

229. भगवती अहिंसा

एसा सा भगवइ अहिंसा जा सा
भीयाणं विव सरणं,
पक्खीणं पिव गमणं,
तिसियाणं पिव सलिलं,
खुहियाणं पिव असणं,
समुद्दमज्झे व पोत वहणं
चउप्पयाणं व आसपयं दुहट्टिहियाणं च
ओसहिबलं अडवि मज्झे वि सत्थ गमणं
एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 873]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/22***

यह भगवती अहिंसा भयभीतों का शरण है। पक्षियों को जैसे गगन, तृषितों को जैसे जल, बुभुक्षितों को जैसे भोजन, समुद्र के मध्य में जैसे यात्रियों को जलयान, रोगियों को जैसे औषध का बल और अटवी में जैसे सार्थवाह का साथ महत्त्वपूर्ण है, भगवती अहिंसा का महत्त्व इससे भी बहुत अधिक है।

230. अपण्डित कौन ?

वाहत्तारिकलाकुसला, पंडिय पुरिसा अपंडिया चेव।
सव्वकलाणं पवरं, जे धम्मकला न जाणंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 873]

— ***प्रश्न व्याकरण सटीक 1 संवर द्वार***

बहत्तर कलाओं में कुशल पण्डित पुरुष यदि सभी कलाओं में श्रेष्ठ 'धर्मकला'को नहीं जानता है, तो वह अपण्डित ही है।

231. थोथा शास्त्र

किं तीए पढ़ियाए पय कोड़िए पलाल भूयाए।
जत्थेत्तियं ण नायं, परस्स पीडा न कायव्वा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 873]

— ***सूत्रकृतांग 1 श्रुत॰ 11 अ॰***

— ***प्रश्न व्याकरण सटीक 1 संवर द्वार***

जब तक दूसरों के दु:ख को दूर नहीं किया जाय तब तक निरर्थक पुआल तुल्य उन करोड़ों पदों-शास्त्रों को पढ़ लेने से क्या ?

232. जिनवाणी - ध्येय

सव्व जग जीव रक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 874]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/22***

भगवान् ने समस्त प्राणी जगत् की रक्षा रूप दया के निमित्त प्रवचन दिये हैं।

233. निंदा त्याग

सव्वे पाणा ण हीलियव्वा न निंदियव्वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 874]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/23***

विश्व के किसी भी प्राणी की न अवहेलना करनी चाहिए और न निंदा ।

234. अहिंसाराधक

णवि मित्त-पत्थण-सेवणाते भिक्खं गवेसियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 874]

— ***प्रश्नव्याकरण 2/6/22***

अहिंसा का आराधक श्रमण मित्रता प्रकट करके, प्रार्थना करके, सेवा करके भी भिक्षा की गवेषणा नहीं करें ।

235. भिक्षा-ग्रहण-विधि

णवि हिलणाते णवि णिंदणाते भिक्ख गवेसियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 874]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/22***

सुसाधु अन्य लोगों के समक्ष न तो गृहस्थ की बदनामी करके और न ही उसके निन्दा-दोष प्रकट करके भिक्षा ग्रहण करे ।

236. अहिंसाराधक-कर्त्तव्य

णवि वंदण - माणणं - पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 874]

— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/22***

अहिंसाराधक को गृहस्थ की प्रशंसा - सम्मान - पूजा-सेवा करके भिक्षा की गवेषणा नहीं करना चाहिए ।

237. भोजन का उद्देश्य

अक्खो वंजणवणाणुलेवण भूयं संजम जाया णिमित्तं ।
संजम भार वहणट्ठाए भुंजेज्जा पाण धारणट्ठयाए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 875]
— ***प्रश्न व्याकरण –2/6/23***

जैसे गाड़ी की धुरी में तेल देना, घाव पर मरहम लगाने के समान है, उसीप्रकार केवल संयम-यात्रा को निभाने के लिए, संयम भार को वहन करने के लिए तथा प्राणों को धारण करने के उद्देश्य से साधक को यतनापूर्वक भोजन करना चाहिए ।

238. निर्ग्रन्थ साधक

मणं परिजाणइ से णिग्गंथे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 875]
— ***आचारांग 2/3/15/778***

जो अपने मन को अच्छी तरह परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ साधक है ।

239. दुश्चिन्तन

न कया वि मणेण पावतेणं पावगं किंचिवि झायव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 875]
— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/23***

मन से कभी भी बुरा नहीं सोचना चाहिए ।

240. दुर्वचन

न कया वि (वइए) तीए पावियाते पावकं किंचिवि भासियव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 875]
— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/23***

वचन से कभी भी बुरा नहीं बोलना चाहिए ।

241. सुसाधु

अहिंसए संजए सुसाहू ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 875]
— ***प्रश्न व्याकरण 2/6/23***

अहिंसक संयमशील साधु ही सुसाधु होता है।

242. धर्म-सार : समता

एतं खु णाणिणो सारं जं न हिंसति किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, इत्ता वंतं विजाणिया ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 878-879]
— *सूत्रकृतांग 1/1/4/10*
— *एवं 1/11/10*

ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। अहिंसा मूलक समता ही धर्म का सार है। बस, इतनी बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिए।

243. अहिंसक बनो !

सव्वे अक्कंत दुक्खाय, अतो सव्वे अहिंसिया।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष**
[भाग 1 पृ. 878-879]
— *सूत्रकृतांग 1/1/4/9 एवं 1/11/9*

सभी जीवों को दुःख अप्रिय है, ऐसा मानकर सभी को अहिंसक बने रहना चाहिए।

244. हिंसा - निषेध

न हिंस्यात् सर्वभूतानि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 878]
— *छान्दोग्य उपनिषद् अ. 8*

किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।

245. धार्मिक कौन ?

न हिंस्यात्सर्वभूतानि, स्थावराणि चराणि च ।
आत्मवत् सर्वभूतानि, यः पश्यति स धार्मिकः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 878]
— *छान्दोग्य उपनिषद् अ. 8*

किसी भी त्रस और स्थावर प्राणी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। जो सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है, वस्तुतः वही धार्मिक है।

246. धर्म का अङ्ग

अहिंसा परमं धर्माङ्गम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 879]

— ***सूत्रकृतांग सटीक 2/2***

अहिंसा उत्कृष्ट धर्म का अङ्ग है।

247. सत्य-संरक्षा क्यों ?

अहिंसैव मता मुख्या स्वर्ग मोक्षप्रसाधिनी ।
अस्याः संरक्षणार्थं च न्याय्यं सत्याऽऽदिपालनम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 882]
एवं [भाग 4 पृ. 2457]

— ***हरिभद्रीय 16 अष्टक एवं***

— ***धर्मरत्न प्रकरण 1 अधि० पृ. 14***

स्वर्ग, मोक्षप्रसाधिनी अहिंसा ही मुख्य कही गई है और सत्यादि का पालन इसकी संरक्षा के लिए ही उचित है।

248. उपशम

उवसमसारं (खु) सामण्णं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 884]

— ***बृहत्कल्प सूत्र 1/34***

श्रमणत्व का सार है - उपशम।

249. आराधक - विराधक

जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा ।
जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 884]

— ***बृहत्कल्पसूत्र 1 उ./34***

जो कषाय को शान्त करता है, वही आराधक है । जो कषाय को उपशान्त नहीं करता, उसकी आराधना, आराधना नहीं होती ।

250. हितकारी-अहितकारी आहार

अहिताशनसम्पर्का - त्सर्वरोगोद्भवो यतः ।
तस्मात्तदहितं त्याज्यं, न्याय्यं पथ्यनिवेषणम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 887]
एवं [भाग 2 पृ. 549]
– ***पिण्ड निर्युक्ति वृत्ति***

अहितकारी आहार करने से सारे रोग उत्पन्न होते हैं । इसलिए अहितकारी आहार का त्याग करना चाहिए और हितकारी (पथ्यकारक) आहार का सेवन करना ही उचित है ।

251. व्यर्थ प्रयत्न

क्षान्तं न क्षमया गृहोचित सुखं त्यक्तं न सन्तोषतः,
सोढा दुःसह तापशीतपवनाः क्लेशान्न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितं द्वन्द्वै र्न तत्त्वं परं,
यद्यत् कर्म कृतं सुखार्थिभिरहो ! तैस्तैः फलैर्वञ्चितः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 1 पृ. 887]
एवं [भाग 7 पृ. 647]
– ***सूत्रकृतांग सूत्र सटीक 1/2/1***
एवं सुभाषित श्लोक संग्रह 695

आश्चर्य है, हे मानव ! गृहस्थाश्रम के सुखों को तूने क्षमा द्वारा कभी क्षान्त या दमित नहीं किया और न उनमें सन्तोष किया । गृहस्थ सुखों की पिपासा में दुःसह शीत-गर्मी और वायु-कष्ट तो सहन कर लिए, परन्तु इन क्लेशों के उद्धार हेतु तपस्या नहीं की । तूने रातदिन वित्तेषणा का ध्यान-चिन्तन तो किया, किन्तु द्वन्द्वों-विकल्पों से परे उस परम तत्त्व परमात्मा का नियमित ध्यान नहीं किया । हे भव्य ! सुखैषणा में तूने जिन - जिन भौतिक सुखों के लिए प्रयत्न किया उन - उन से तू वञ्चित ही होता रहा ।



प्रथम
परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
24.	अजीर्ण प्रभवा रोगाः ।	1	203
29.	अजीर्णे भोजने वारि, जीर्णे वारि बलप्रदम् ।	1	203
30	अज्जवयाएणं काउज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ ।	1	219
31.	अवि संवायणं संपन्नयाएणं जीवे । धम्मस्स आराहए भवइ ॥	1	219
37.	अहिंसा सत्य मस्तेयं, ब्रह्मचर्यमसङ्गता । गुरुभक्ति स्तपोज्ञानं, सत्पुष्पाणि प्रचक्षते ॥	1	246
82.	अणुसासण मेवपक्कमे ।	1	332
90.	अतीन्द्रियं परं ब्रह्म, विशुद्धानुभवं विना । शास्त्र युक्ति शतेनापि, नगम्यं यद् बुधा जगुः ॥	1	392
93.	अणुसासणं पुढो पाणे ।	1	421
104.	अज्ञानं खलु कष्टम् ।	1	488
103.	अज्ञानं खलु कष्टं, क्रोधादिभ्योऽपि सर्वपापेभ्यः । अर्थ हितमहितं वा न वेत्ति येनावृत्तो लोकः ॥	1	488
107.	असंकि याइं संकंति, संकियाइं असंकिणो ।	1	491
109.	अप्पणो य परं णालं कुतो अण्णेऽणु सासिउं ?	1	492
114.	अच्छेद्योऽयमदाह्योऽय-म मविकार्योऽयमुच्यते । नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥	1 6	502 747
115.	अर्थानामर्जने दुःखमर्जितानां च रक्षणे । आये दुःखं व्यये दुःखं, धिगर्थ दुःखकारणम् ॥ (पाठान्तरम् – धिगर्थोऽनर्थ भाजनम् ॥)	1	506-803
119.	अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ।	1	518
120.	अथिरे पलोट्टति, नो थिरे पलोट्टति; अथिरे भज्जति, नो थिरे भज्जति ॥	1	518
122.	अदक्खुव दक्खुवाहितं सद्दहसु ।	1	525

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
123.	अदिण्णादाणं हर दह मरण भय कलुसतासण पर संतिकभेज्ज लोभमूलं।	1	526
124.	अदत्तादाणं................अकित्तिकरणं अणज्जं................सदा साहु गरहणिज्जं।	1	526
126.	अच्चंत विपुल दुक्खसय संपलिता परस्सदव्वेहिंजे अविरया।	1	533
127.	अणणुण्ण विय पाण भोयण भोई........से णिग्गंथे अदिण्णं भुंजेज्जा।	1	541
128.	अणुन्न वियगेण्हियव्वं।	1	542
130.	असंविभागी, असंगहरूती........अप्पमाण भोई........सेतारिसए नाराहए वयमिणं।	1	542
131.	अपरिग्गह संवुडेणं लोगम्मि विहरियव्वं।	1	542
138.	अट्ठे परिहायती बहू, अहिगरणं न करेज्ज पंडिए।	1	571
140.	अवच्छलत्ते य दंसण हाणी।	1	574
141.	अकसायं खु चरित्तं।	1	574
145.	अकसायं निव्वाणं।	1	575
148.	असज्जमाणे अप्पडिबद्धेयावि विहरइ।	1	594
150.	अप्पडिबद्धयाएणं, निस्संगत्तं जणयइ।	1	594
151.	अप्पमत्ते समाहिते झाती।	1	597
153.	अकुसलमण निरोहो, कुसलमण उदीरणं वा।	1	597
		6	1154
154.	अप्पमत्ते जए निच्चं।	1	597
155.	अप्पमत्ते सया परिक्कमेज्जासि।	1	597
156.	अणण्ण परमं णाणी णो पमादे कयाइ वि।	1	598
159.	असुताणं धम्माणं सम्म सुणणताते अब्भुट्ठेतव्वं भवति।	1	598
160.	अलं कुसलस्स पमादेन।	1	598
162.	असंगिहीत परितणस्स संगिण्हणताते अब्भुट्ठेयव्वं भवति।	1	598

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
164.	अनीदृशस्य च यथा न भोगसुखमुत्तमम् । अशान्तादेस्तथा शुद्धं नानुष्ठानं कदाचन ॥	1	608
166.	अबंभं........जरामरण रोग सोग बहुलं ।	1	675
167.	अबंभं च....तव संजम बंभचेर विग्घं भेयायतण बहु पमादमूलं ।	1	675
173.	अभ्यासेन क्रियाः सर्वाः, अभ्यासात् सकलाः कलाः । अभ्यासाद् ध्यान मौनादि. किमभ्यासस्य दुष्करम् ॥	1	691
184.	अरइं आउट्टे से मेधावी ।	1	753
187.	अज्जेवाहं न लब्भामि, अविलाभो सुए सिया । जो एवं पडि संचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥	1	772
188.	अलाभो मे परमं तपः ।	1	772
190.	अलिअं न भासि अव्वं, अत्थि हु सच्चं पिजं न वत्तव्वं । सच्चं पि तं न सच्चं, जं पर पीडाकरं वयणं ।	1	773
192.	अलियंणियडिसाति जोयबहुलं नीयजण निसेवियं । निस्संसं अपच्चयकारकं ।	1	777-784
198.	अलिया हिंसंति संनिविट्ठा असंत गुणुदीरकाय संतगुण नासकाय ।	1	781
199.	अलिय वयणं........अयसकरं वेरकरगं........मण संकिलेस वियरणं ।	1	784
202.	अपाय बहुलं पापं, ये परित्यज्य संसृताः । तपोवनं महासत्त्वा - स्ते धन्यास्ते मनस्विनः ॥	1	803
204.	अह चोद्दसहिं ठाणेहिं वट्टमाणे उ संजए । अविणीए वुच्चई सोउनिव्वाणं च गच्छई ॥	1	806
205.	असंविभागी अचियत्ते अविणीए त्ति वुच्चई ।	1	806
206.	असंखयं जीविय मा पमायए ।	1	819
220.	अशाश्वतानि स्थानानि सर्वाणिदिवि चेह च । देवसुरमनुष्याणामृद्धयश्च सुखानि च ॥	1	845
226.	अहिंसा जा सा सदेव मणुया सुरस्स लोगस्स भवति दीवो ताणं सरणं गती पइट्ठा ।	1	872

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
[illegible]	[illegible]		
	संजम भार वहण ट्ठाए भुंजेज्जा पाण धारणट्ठयाए।	1	875
241.	अहिंसए संजए सुसाहू।	1	875
246.	अहिंसा परमं धर्माङ्गम्।	1	879
247.	अहिंसैव मता मुख्या स्वर्ग मोक्षप्रसाधनी।		
	अस्याः संरक्षणार्थं च न्याय्यं सत्याऽऽदिपालनम्।	1	882
		4	2457
250.	अहिताशनसम्पर्का, – त्सर्वरोगोद्भवो यतः।		
	तस्मात्त दहितं त्याज्यं, न्याय्यं पथ्यनिवेषणम्॥	1	887
		2	549
	आ		
10.	आरम्भसत्तां गढिता य लोए, धम्मं न याणंति		
	विमोक्ख हेउं।	1	126
25.	आमं विदग्धं विष्टब्धं, रसशेषं तथा परम्।	1	203
26.	आमे तु द्रव गन्धित्वं, विदग्धे धूमगन्धिता।		
	विष्टब्धे गात्रभङ्गोऽत्र रसशेषे तु जाड्यता॥	1	203
36.	आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं।	1	240
		3	556
95.	आदीपमा व्योम सम स्वभावं।		
	स्याद्वाद मुद्रानति भेदिवस्तु॥	1	423
83.	आमे घड़े निहित्तं, जहा जलं तं घडं विणासेइ।		
	इअ सिद्धंत रहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ॥	1	351
62.	आउत्तया जस्स य नत्थि काई।		
	इरियाए भासाए तहेसणाए॥		
	आयाण निक्खेव दुगुंछणाए।		
	नवीर जायं अणु जाई मग्गं॥	1	325-326
157.	आत गुत्ते सदा वीरे जाता माताए जावए।	1	598
	इ		
44.	इच्छा कामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए।	1	280

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
100.	इच्चेय गणि पिडगं, निच्चं दव्वट्ठियाए नायव्वं । पज्जाएण अणिच्चं, निच्चानिच्चं च सियवादो ॥	1	441
76.	इत्यनित्यं जगद्वृत्तं, स्थिर चित्तः प्रतिक्षणम् । तृष्णा कृष्णाहिमन्त्राय निर्ममत्वाय चिन्तयेत् ॥	1	332
169.	इहलोए वि ताव नट्ठा, पर लोए वि नट्ठा ।	1	679
200.	इमाइं छ अवतणाइं । तंजहा - अलिय वयणे, हीलिय वयणे, खिंसित वयणे, फरुस वयणे, गारत्थिय वयणे, विउ सवितं वा पुणो उदीरित्तते ।	1	795
215.	इन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्येते, यन्मृत्योर्यान्ति गोचरम् । अहो तदन्तकातङ्के, कःशरण्य शरीरिणाम् ॥	1	844
	उ		
69.	उद्देसियं कीयगडं नियागं, त मुंचई किंचि अणेसणिज्जं । अग्गिविवा सव्वभक्खी भवित्ताइओ चुए गच्छइ कट्टु पावं ॥	1	327
168.	उवणमंति मरण धम्मं अवितत्ता कामाणं ।	1	677-679 678
248.	उवसमसारं (खु) सामण्णं ।	1	884
	ए		
7.	एकं हि चक्षुरमलं सहजो विवेकः, तद्वद्भि रेव सह संवसति द्वितीयम् । एतद् द्वयं भुवि न यस्य तत्त्वतोऽन्धस्, तस्यापमार्ग चलने खलु को ऽ पराधः ॥	1 5	105 70
110.	एवं तक्काए साहेंता धम्माऽधम्मे अकोविया । दुक्खं ते नाइ तुट्टंति, सउणी पंजरं जहा ॥	1	493
133.	एगे चरेज्ज धम्मं ।	1	544
178.	एकतः क्रतवः सर्वे, समग्रवर दक्षिणा । एक तो भयभीतस्य, प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥	1	706
196.	एक एव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जल चन्द्रवत् ॥	1	780

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
227.	एसा भगवती अहिंसा.........भीयाणं विव सरणं।	1	873
229.	एसा सा भगवइ अहिंसा जा सा भीयाणं विव सरणं, पक्खीणं पिव गमणं, तिसियाणं पिव सलिलं, खुहियाणं पिव असणं, समुद्दमज्झे व पोत वहणं चउप्पयाणं व आसपयं दुहट्ठिहियाणं च ओसहिबलं अडवि मज्झे वि सत्थ गमणं एत्तो विसिट्ठतरिका अहिंसा।	1	873
242.	एतं खु णाणिणो सारं जं न हिंसति किंचणं। अहिंसा समयं चेव, इत्ता वंतं विजाणिया॥	1	878-879
	औ		
34.	औचित्याद् वृत्तमुक्तस्य, वचनात् तत्त्व-चिन्तनम्। मैत्र्यादि सारमत्यन्त-मध्यात्मकतद् विदोः विदुः॥	1	227
	अं		
108.	अंधो अंध पहंणिंतो, दूरमद्धाण गच्छती।	1	492
	क		
75.	कल्लोल चपला लक्ष्मीः, सङ्गमाः स्वप्नसंनिभाः। वात्याव्यतिकरोत्क्षिप्त - तुलतुल्यं च यौवनम्॥	1	331
139.	कसाय सहितो न संजओ होइ।	1	574
	का		
53.	कामं परितावो, असायहेतु जिणेहिं पणतो। आत-परहित करो पुण, इच्छिज्जइ दुस्सले खलुउ॥	1	297
	के		
92.	केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्र क्षीराऽवगाहिनी। विरलातद्रसास्वाद विदोऽनुभव जिह्वया॥	1	393
	को		
33.	कोहं च माणं च तहेव मायं। लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा॥	1	227
85.	को कल्लाणं नेच्छइ।	1	353
	किं		
231.	किं तीए पढियाए पय कोडिए पलाल भूयाए। जत्थेत्तियं ण नायं, परस्स पीडा न कायव्वा॥	1	873

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
186.	क्लिश्यन्ते केवलं स्थूलाः, सुधीस्तु फलमश्नुते । दन्ता दलन्ति कष्टेन, जिह्वया गिलति लीलया ॥	1	762
	खं		
43.	खंती य मद्दवऽज्जव, मुत्ती तव संजमे य बोधव्वे । सच्चं सोयं आकिंचणं च, बंभं च जइ धम्मो ॥	1	279
	गि		
158.	गिलाणस्स अगिलाते वेयावच्चंकरणताए अब्भुट्ठेयव्वं भवइ ।	1	598
	गु		
86.	गुण सुट्ठियरस वयणं, घयपरिसित्तुव्व पावओ भाइ । गुण हीणस्स न सोहइ, नेह विहूणो जह पईवो ॥	1	353
	घ		
97.	घटमौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम् । शोकप्रमोद माध्यस्थं जनोयाति सहेतुकम् ॥ पयोव्रतो न दध्यति न पयोऽति दधिव्रतः । अगोरस व्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम् ॥	1	425
	च		
39.	चत्वारो नरक द्वाराः, प्रथमं रात्रि भोजनम् । परस्त्री सङ्गमश्चैव, सन्धानानन्त कायिके ॥	1	264
89.	चरण पडिवत्ति हेउं, धम्मकहा ।	1	356
203.	चत्तारि अवातणिज्जा पन्नता, तंजहा अविणीवीई पडिबद्धे, अविओ सवित पाहुडे मायी ।	1	804
	ज		
3.	जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं ।	1	7
56.	जहा महातलागस्स, सन्निरूद्धे जलागमे । उस्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥ एवं तु संजयस्सा वि पावकम्म निरासवे । भवकोड़ि संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ॥	1	321
		4	2199-2200

77.	जइ वि य णिगिणे किसे चरे, जइविय भुंजियमासमंतसो । जे इह मायादि मिज्जती, आगंता गब्भायऽणंत सो ॥	1	332
142.	जह कोहाइ विवड्ढी, तह हाणी होइ चरणे वि ।	1	574
175	जहि णत्थि सारणा वारणा य पडिचोवायणा य गच्छम्मि । सो उ अगच्छो गच्छो संजम कामीण मोत्तव्वो ।	1	699
195.	जले विष्णुः, स्थले विष्णुः विष्णुपर्वत मस्तके । ज्वाल माला कुले विष्णुः, सर्व विष्णुमयं जगत् ॥	1	780
207.	जरोवणीयस्सहु नत्थि ताणं ।	1	819
219.	जन्मजरामरणभयै - रभिद्रुते व्याधिवेदनाग्रस्ते । ज़िनवरवचनादन्य-त्र नास्ति शरणं क्वचिल्लोके ॥	1	844
		2	178

जि

116.	जिणवयणम्मि परिणए, अवत्थविहि आणु ठाणओ धम्मो । मच्चश्र ऽ सयप्पयोगा, अन्थो वीसंभओ कामो ॥	1	507

जे

32	जे अज्झत्थं जाणंति मे बहिया जाणति । जे बहिया जाणति मे अज्झत्थं जाणति ॥ एतं तुल्लमण्णेसिं ।	1	227
	6	1061	
67.	जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे । निमित्त को ऊहल संपगाढे ॥ कुहेड विज्जासवदार जीवी । न गच्छइ सरणं तंमि काले ॥	1	326
171.	जे अबुद्धा महाभागा, वीरा असम्मत्तं दंसिणो । असुद्धं तेसिं परक्कंतं, सफलं होइ सव्वसो ॥	1	684
		5	60

जो

63.	जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं सम्मं नो फासयति पमाया । अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥	1	325

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
87.	जो उत्तमेहिं पहओ, मग्गो सो दुग्गमो न सेसाणं ।	1	353
101.	जो सियवायं भासति, पमाण नय पेसलं गुणाधारं । भावेइ सेण णसेयं, सो हि पमाणं पवयणस्स ॥	1	441
102.	जो सियवायं निंदति, पमाण नय पेसल गुणाधारं । भावेण दुट्ठभावो, न सो पमाण पवयणस्स ॥	1	441
249.	जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा । जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा ॥	1	884
	जं		
5.	जं इच्छसि अप्पणतो, जंवण इच्छसि अप्पणतो । तं इच्छं परस्स वियं, इत्तियगं जिण सासणयं ॥	1	87
143.	जं अज्जियं चरित्तं, देसूणाए वि पुव्व कोडीए । तं पिय कसायमित्तो, नासेइ नरो मुहुत्तेणं ॥	1	575
172.	जं अब्भासइ जीवो, गुणं च दोसं च एत्थ जम्मम्मि । तं पावइ परलोए, तेण य अब्भास जोएण ॥	1	691
	ण		
99.	ण हु सासण भत्ती मे-त्तएण सिद्धन्त जाणओ होइ । ण वि जाणओ विणियमा, पणवणा निच्छिओ णाम ॥	1	440
234.	णवि मित्त-पत्थण-सेवणाते भिक्खं गवे सियव्वं ।	1	874
235.	णवि हिलणाते णवि णिंदणाते भिक्ख गवेसियव्वं ।	1	874
236.	णवि वंदण - माणणं - पूयणाते भिक्खं गवेसियव्वं ।	1	874
	णी		
54.	णीवारे य न लीएज्जा, छिन्न सोते अणाइले ।	1	306
	त		
136.	तवो वि धम्मो ।	1	545
146.	तमतिमिर पडल भूतो पावं चिंतेइ दीह संसारी ।	1	581
224.	तत्थ पढमं अहिंसा, तस थावर सव्व भूय खेमकरी ।	1	872
	ता		
78.	ताले जह बंधणच्चुते, एवं आउक्खयम्मि तुट्टती ।	1	332

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	द		
12.	ददतु ददतु गालीं गालिमंतो भवन्तः । वयमपि तदभावात् गालिदानेऽप्यशक्ताः । जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं । न ददतु शश विषाणं ये महात्यागिनोऽपि ॥	1	131
88.	दविए दंसण सुद्धा, दंसण सुद्धस्स चरणं तु ।	1	356
98.	दव्वं खित्तं कालं, भाव पज्जाय देससंजोगे । भेदं च पमुच्च समा, भावाणं पणवण पज्जा ॥	1	438
165.	दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः । कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥	1 3	610 334
179.	दत्तमिष्टं तपस्तप्तं, तीर्थसेवा तथा श्रुतम् । सर्वाण्य भय दानस्य, कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥	1	706
	दु		
191.	दुग्गइ - विणिवाय विवडढणं ।	1	777 एवं 784
	द्वि		
212.	द्विषद् विषतमो रोगै दुःखमेकत्र दीयते । मिथ्यात्वेन दुरन्तेन, जन्तो र्जन्मनि जन्मनि ॥	1	840
	ध		
19.	धर्मार्थ यस्य वित्तेहा, तस्या नीहा गरीयसी । प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥	1	179
117.	धम्मो अत्थो कामो भिन्ने ते पिंडिया पडिसवत्ता । जिणवयण उत्तिन्ना, अवसत्ता होंति नायव्वा ॥	1	507
118.	धम्मस्स फलं मोक्खो ।	1	507
174.	धम्मस्स मूलं विणयं वयन्ति ।	1	696
185.	धम्मारामे निरारंभे उवसंते मुणी चरे ।	1	754
	धि		
201.	धिग् द्रव्यं दुःखवर्धनम् ।	1	803
	न		
47.	न रसट्ठाए भुंजेज्जा जवणट्ठाए महामुणी ।	1	281

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
68.	न तं अरी कंठ छेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।	1	327
147.	नवणीय तुल्ल हियया साहू।	1	585
181.	नहीं भूयस्तमो धर्मस्तस्मादन्योऽस्ति भूतले। प्राणीनां भयभीतानाम भयं यत्प्रदीयते ॥	1	706
194.	न हि भवति यन्न भाव्यं, भवति च भाव्यं विनाऽपि यत्नेन। करतलगतमपि नश्यंति, यस्य तु भवितव्यता नास्ति ॥	1	780
211.	न मिथ्यात्व समः शत्रु - र्न मिथ्यात्व समं विषम्। न मिथ्यात्व समो रोगो, न मिथ्यात्व समं तपः ॥	1	840
222.	नवस्रोतः स्रवद्विस्र - रसनिस्यन्दपिच्छिले। देहे शौच संकल्पो, महन्मोह विजृम्भितम् ॥	1	850
239.	न कया वि मणेण पावतेणं पावगं किंचिवि झायव्वं।	1	875
240.	न कया वि (वइए) तीए पावियाते पावकं किंचिवि भासियव्वं।	1	875
244.	न हिंस्यात् सर्वभूतानि।	1	878
245.	न हिंस्यात्सर्वभूतानि, स्थावराणि चराणि च। आत्मवत् सर्वभूतानि, यः पश्यति स धार्मिकः ॥	1	878
	ना		
22.	नाणी नो परिदेवए।	1	190
		4	2146
106.	नानाशास्त्र सुभाषितामृतरसैः श्रोत्रोत्सवं कुर्वताम्, येषां यान्ति दिनानि पण्डितजन व्यायामखिन्नात्मनाम्। तेषां जन्म च जीवितं च सफलं तै रेव भूर्भूषिता, शेषै किं पशुवद्विवेक रहितै र्भूभार भूतैर्नरैः ॥	1	488
121.	नासतो जायते भावो, ना भावो जायते सतः।	1	518
	नि		
52.	निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो। संपत्तो केवलं नाणं, सासए परिनिव्वुडे ॥	1	282

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
72.	निरासवे संख विया़ण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं।	1	327
149.	निसंगत्तेणं जीवे एगे, एगग्ग चित्ते।	1	594
193.	निक्खेवे अवहरंति, परस्स अत्थम्मि गढियगिद्धा।	1	778
	प		
125.	परदव्वहरणरा णिग्नुकंपा।	1	528
183.	पद्मावती च समुवाच विना वधूटीं, शोभा न काचन नरस्य भवत्यवश्यम्। नो केवलस्य पुरुषस्य करोति कोऽपि, विश्वासमेव विट एव भवेदभार्यः॥	1	709
	पि		
216	पितुर्मातुः स्वसुर्भातु – स्तनयानां च पश्यताम्। अत्राणो नीयते जन्तुः कर्मभिर्यमसद्मनि॥	1	844
	पु		
79.	पुरिसोरम्पाव कम्मुणा, पलियंतं मणुयाण जीवियं।	1	332
197.	पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम्।	1	780
	प्र		
225.	प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।	1	872
	फा		
46.	फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए। तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परम संजए॥	1	280
	भ		
55.	भव कोडी संचियं कम्मं, तवसानिज्जरिज्जई।	1 4	321 2200
	भा		
96.	भागे सिंहो नरो भागे, योऽर्थो भाग द्वयात्मकः। तम भागं विभागेन, नरसिंहः प्रचक्षते॥	1	425
	भि		
49.	भिक्खावित्ती सुहावहा।	1	281

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	म		
27.	मलवातयोर्विगन्धो, विड्भेदो गात्रगौरवमरूच्यम् । अविशुद्धश्चोद्‌गारः, षड जीर्ण व्यक्त लिङ्गानि ॥	1	203
45.	मणोहरं चित्तहरं, मल्ल धूवेण वासियं । सकवाडं पंडुरूल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥	1	280
70.	मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियं ठाणवए पहेणं।	1	327
180.	महतामपि दानानां, कालेन क्षीयते फलम् । भीता भय प्रदानस्य, क्षय एव न विद्यते ॥	1	706
238.	मणं परिजाणइ से णिग्गंथे ।	1	875
	मा		
1.	मा पडिबंध करेह ।	1	7
41.	मायी विउव्वति, नो अमायी विउव्वति ।	1	274
57.	माणुस्सं खु सुदुल्लहं ।	1	322
209.	मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति किंचिदपराधम् । सर्प इवाविश्वास्यो, भवति तथाप्यात्मदोषहतः ॥	1	835
	मि		
9.	मिच्छत्तं वेयन्तो, जं अन्नाणी कहं परिकहेइ । लिंगत्थो व गिही वा, सा अकहा देसिआ समए ॥	1 6	124 274
170.	मित्ताणि खिप्पं भवंति सत्तू ।	1	679
	मू		
28.	मूर्च्छा प्रलापो वमथुः, प्रसेकः सदनं भ्रमः । उपद्रवा भवन्त्येते, मरणं वाऽप्य जीर्णतः ॥	1	203
105.	मूर्खत्वं हि सखे ! ममापि रुचितं तस्मिन् यदष्टौ गुणाः । निश्चिन्तौ[1] बहुभोजनो[2] ऽत्रपमाना[3] नक्तं दिवा शायकैः[4] ॥ कार्याकार्य विचारणान्धबधिरो[5] मानापमाने समः[6] । प्रायेणामय वर्जितो[7] दृढ वपु[8] मूर्खः सुखं जीवति ॥	1	488

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	मै		
112.	मैत्र्या सर्वेषु सत्त्वेषु, प्रमोदेन गुणाधिके ।		
	मध्यस्थेष्वविनीतेषु, कृपया दुःखितेषु च ॥	1	496
		2	503
	य		
73.	यत्प्रातस्तन्न मध्याह्ने, यन्नमध्याह्ने न तन्निशि ।		
	निरीक्ष्यते भवेऽस्मिन् हि, पदार्थानामनित्यता ॥	1	331
84.	यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति ।	1	352
176.	य स्वभावात्सुखौषिभ्यो, भूतेभ्यो दीयते सदा ।		
	अभयं दुःख भीतेभ्योऽभयदानं तदुच्यते ॥	1	706
208.	यथा चित तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रियाः ।		
	धन्यास्ते त्रितये येषां, विसंवादो न विद्यते ॥	1	835
	र		
221.	रसासृङ्मांसमेदोऽस्थि – मज्जाशुक्रान्त्रवर्चसाम् ।		
	अशुचीनां पदं कायः, शुचित्वं तस्य तत्कुतः ॥	1	850
	रा		
65.	राढामणी वेरूलि यप्पकासे,		
	अमहग्घए होइ हु जाणएसु ।	1	326
144.	रागद्दोस विमुक्को, सीयघर समो आयरिओ ।	1	575
	ल		
189.	लद्धे पिंडे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज संजए ।	1	772
	लो		
223.	लोकः खल्वाधारः सर्वेषां ब्रह्मचारिणां यस्मात् ।		
	तस्माल्लोक विरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ॥	1	867
	व		
35.	वइगुत्ते अज्झप्प संवुडे परिवज्जए सदा पावं ।	1	229
210.	वरं प्राण परित्यागो, मा मान परिखण्डना ।		
	प्राण त्यागे क्षणं दुःखं, मान भङ्गे दिने दिने ॥	1	836

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	भाग	पृष्ठ
213.	वरं ज्वाला कुले क्षिप्तो, देहिनाऽत्मा हुताशने । न तु मिथ्यात्व संयुक्तं, जीवितव्यं कदाचन ॥	1	840
	वा		
20.	वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्न प्रदानमेततु पूर्तं तत्त्व विदो विदुः ॥	1	180
230.	वाहत्तरिकलाकुसला, पंडिय पुरिसा अपंडिया चेव । सव्वकलाणं पवरं, जे धम्मकला न जाणंति ॥	1	873
	वि		
16.	विसं खाएज्ज हालाहलं, तं किर मारेइ तक्खणं । ण करेऽगीयत्थसंसग्गिं, विढवे लक्खंपिजं तहिं ॥	1	162
66.	विसं तु पीयं जह काल कूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं । एसेव धम्मो विसओ ववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवण्णो ॥	1	326
134.	विणओ वि तवो ।	1	545
	व्या		
91.	व्यापारः सर्वशास्त्राणां दिक्प्रदर्शनमेव हि । पारंतु प्रापयत्येकोऽनुभवो भववारिधेः ॥	1	392
	स		
6.	सव्वारंभ परिग्गह-णिक्खेवो सव्वभूत समया य । एक्कग्गमण समाही, - णया अह एत्तिओ मोक्खो ॥	1	87
11.	सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू ण संजले ।	1	131
14.	सम सुह दुक्ख सहे य जे, स भिक्खू ।	1	132
48.	समलेट्ठु कंचणे भिक्खू ।	1	281
		7	281
80.	सन्ना इह काम मुच्छिया, मोह जंति नरा असंवुडा ।	1	332
94.	सच्चे तत्थ करे हु वक्कमं ।	1	421
111.	सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वइं । जे उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया ॥	1	493

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
129.	सया अप्पमाण भोती सततं अणुबद्धवेरेय तिव्वरोसी, [illegible]	[illegible]	542
177.	सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञा यथोदिताः । सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च, यत्कुर्यात् प्राणिनां दया ॥	1	706
228.	सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिन्द्रियसंग्रहः सर्वभूत दया शौचं, जलशौचं च पञ्चमम्	1 7	873 1004 एवं 1165
232.	सव्व जग जीव रक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं ।	1	874
233.	सव्वे पाणा ण हीलियव्वा न निंदियव्वा ।	1	874
243.	सव्वे अक्कंत दुक्खाय, अतो सव्वे अहिंसिया ।	1	878-879
	सा		
42.	सारद सलिल इव सुद्धहियया विहग इव विप्पमुक्का वसुंधरा इव सव्व फास विसहा ।	1	278
135.	साहम्मिए विणओ पउंजियव्वो ।	1	545
137.	सामन्नमणु चरंत-स्स कसाया जस्स उक्कडा होंति । मन्नामि उच्छु पुप्फं च निप्फलं तस्स सामन्नं ॥	1 5	571 382
	सी		
61.	सीयन्ति एगे बहु कायरा नरा ।	1	325
	सु		
50.	सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अनियाणे अकिंचणे । वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥	1	282
152.	सुस्सूसए आयरिएऽप्पमत्तो ।	1	597
161.	सुयाता धम्माणं ओगिण्णताते उवधारणयाते अब्भुट्ठेतव्वं भवति ।	1	598

सूक्ति नम्बर	सूक्ति	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	सं		
132.	संविभाग सीले संग हो वग्गह कुसलेसे, तारिसे आराहते वयमिणं ।	1	543
218.	संसारे दुःखदावाग्नि – ज्वलद् ज्वाला करालिते । वने मृगार्भकस्येव, शरणं नास्ति देहिनः ॥	1	844
	श		
74.	शरीरं देहिनां सर्व – पुरुषार्थ निबन्धनम् । प्रचण्डपवनोद्धूत, — घनाघनविनश्वरम् ॥	1	331
	शु		
38.	शुश्रूषा श्रवणं चैव, ग्रहणं धारणं तथा । ऊहोऽपोहोऽर्थ विज्ञानं, तत्त्व ज्ञानं च धी गुणाः ॥	1	247
163.	शुद्धयल्लोके यथा रत्नं जात्यं काञ्चनमेववा । गुणैः संयुज्यते चित्रैस्तद्वदात्माऽपि दृश्यताम् ॥	1	607
	शो		
217.	शोचन्ति स्वजनानऽन्तं नीयमानान् स्वकर्मभिः । नेष्यमाणं न शोचन्ति, नात्मानं मूढबुद्धयः ॥	1	844
	हे		
182.	हेम धेनु धरादीनां दातारः सुलभाभुवि । दुर्लभ पुरुषोलोके, यः प्राणिष्वभयप्रदः ॥	1	706
	हिं		
214.	हिंसाऽनृतादयः पञ्च, तत्त्वाश्रद्धानमेव च । क्रोधादयश्च चत्वारः इति पापस्य हेतवः ॥	1	840
	क्षा		
251.	क्षान्तं न क्षमया गृहोचित सुखं त्यक्तं न सन्तोषतः, सोढा दुःसह तापशीतपवनाः क्लेशान्न तप्तं तपः । ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितं द्वन्द्वै र्न तत्त्वं परं, यद्यत् कर्म कृतं सुखार्थि भिरहो ! तैस्तैः फलैर्वञ्चितः ॥	1 7	887 647

द्वितीय
परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
31	159	अश्रुत धर्म-श्रवण
32	160	अप्रमाद
33	162	असहाय-आश्रय
34	163	अन्त:शोधन
35	166	अब्रह्मचर्य
36	167	अब्रह्मचर्य-विघ्न
37	172	अभ्यास-तद्रूपता
38	173	अभ्यास से सर्वसुलभ
39	176	अभयदान
40	178	अनुपम-अभयदान
41	179	अभयदान-श्रेष्ठ
42	181	अभयदान-परमधर्म
43	184	अनुद्विग्न-सुधी
44	187	अलाभ-परिषह
45	191	असत्य-भाषण
46	192	असत्य-स्वरूप
47	199	असत्य-विपाक
48	203	अध्ययन के अयोग्य
49	204	अविनीत
50	205	अविनीत कौन ?
51	216	अशरण-चिन्तन
52	218	अशरण-अनुप्रेक्षा
53	220	अशाश्वत क्या ?
54	221	अपवित्र-काया
55	224	अहिंसा, क्षेमंकरी
56	226	अहिंसा सर्वगुण-सम्पन्न
57	230	अपण्डित कौन ?
58	234	अहिंसा का आराधक
59	236	अहिंसाराधक-कर्तव्य
60	243	अहिंसक बनो !
61	5	आत्मवत् चाहो !
62	10	आरम्भासक्त जीव

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
63	30	आर्जव-अंकुर
64	47	आहार क्यों ?
65	60	आत्मा ही सब कुछ
66	68	आत्महन्ता
67	113	आत्मवत्-स्वरूप
68	114	आत्म-स्वरूप
69	152	आचार्य-शुश्रूषा
70	157	आत्मगुप्त-साधक
71	161	आचरण-तत्परता
72	249	आराधक-विराधक
73	169	इह-परत्र नाश
74	137	ईख का फूल
75	188	उत्तम-तप
76	248	उपशम
77	208	एकरूपता
78	183	एकल अशोभनीय
79	163	कर्मबन्ध-अनुच्छेद
80	64	कर्ता-भोक्ता-आत्मा
81	81	कर्म-विपाक
82	85	कल्याण-कामना
83	138	कलह-हानि
84	139	कषायी-असंयमी
85	142	कषाय, चारित्र-हानि
86	165	कर्मः दग्धबीज
87	61	कायर-जन
88	168	काम-भोग अतृप्ति
89	170	कैसा सत्य ?
90	215	कौन-शरण्य ?
91	48	कञ्चन माटी जाने
92	143	किञ्चित् कषाय से चारित्र-हनन
93	8	किञ्चित् श्रेयस्कर !
94	40	क्रिया-बन्ध

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
127	118	धर्म-फल
128	185	धर्म-विहार
129	242	धर्म-सार, समता
130	246	धर्म का अङ्ग
131	245	धार्मिक कौन ?
132	201	धिग् ! धनम्
133	18	धीर साधक
134	39	नरक-द्वार
135	41	नाना-प्रदर्शन
136	46	निर्ग्रन्थ-निवास
137	70	निर्ग्रन्थ-पथ
138	72	निर्ग्रन्थ-निराश्रव
139	149	निःसङ्ग भाव श्रेष्ठतम
140	150	निर्द्वन्द्वता से निःसङ्ग
141	238	निर्ग्रन्थ साधक
142	67	नैमितज्ञ
143	233	निन्दा त्याग
144	73	पदार्थ क्षणभंगुर
145	90	परब्रह्म-अगम्य
146	97	पदार्थ-स्वरूप
147	155	पराक्रम कहाँ ?
148	196	परमात्मा
149	164	पात्रता
150	214	पाप-हेतु
151	20	पुण्य-कर्म
152	52	पूर्ण आत्मस्थ
153	4	पञ्चाति वर्जित
154	110	पिञ्जरे का पक्षी
155	177	प्राणी दया श्रेष्ठतम
156	29	बलप्रदः जल
157	21	बुद्धि युक्त वाणी

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
222	32	संतुलित-स्वपर
223	42	सन्त-हृदय
224	44	संयमी आत्मा
225	132	संविभागी कौन ?
226	175	संघ, संघ नहीं !
227	147	सन्त हृदय नवनीत-सम
228	95	स्याद्‌वाद का सिक्का
229	96	स्याद्‌वाद
230	100	स्याद्‌वाद नित्यानित्य
231	101	स्याद्‌वाद महिमा
232	102	स्याद्‌वाद निंदक
233	120	स्थिर शाश्वत !
234	227	शरणदात्री कौन ?
235	91	शास्त्र: मात्र दिग्दर्शक
236	92	शास्त्रास्वादी-विरले
237	144	शीतगृह-सम आचार्य
238	153	शुभ-चिन्तन
239	228	शुद्धि के पंचहेतु
240	43	श्रमण-धर्म
241	45	श्रमण-निवास
242	210	श्रेष्ठ पुरुष के लक्षण
243	200	षट्-दुर्वचन
244	53	हितकारी परिताप
245	250	हितकारी-अहितकारी आहार
246	225	हिंसा-अर्थ
247	244	हिंसा-निषेध
248	189	क्षुधा परिषह
249	22	ज्ञानी-अखिन्न
250	36	ज्ञान और कर्म
251	156	ज्ञानी मुनि



तृतीय
परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-१

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
1	7	
2	7	
3	7	
4	11	एवं भाग 2 पृ 900 में भी है।
5	87	
6	87	
7	105	एवं भाग 5 पृ 70 में भी है।
8	123	
9	124	एवं भाग 6 पृ 274 में भी है।
10	126	
11	131	
12	131	
13	131	
14	132	
15	162	
16	162	
17	162	
18	164	
19	179	
20	180	
21	181	
22	190	
23	203	
24	203	
25	203	
26	203	
27	203	
28	203	
29	203	
30	219	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
31	219	
32	227	एवं भाग 6 पृ. 1061 में भी है।
33	227	
34	227	
35	229	
36	240	
37	246	
38	247	
39	264	
40	272	
41	274	
42	278	
43	279	
44	280	
45	280	
46	280	
47	281	
48	281	
49	281	
50	282	
51	282	
52	282	
53	297	
54	306	
55	321	
56	321	एवं भाग 4 पृ. 2199 - 2200 में भी है।
57	322	
58	323	
59	325	एवं भाग 2 पृ. 231 में भी है।
60	325	एवं भाग 2 पृ. 231 में भी है।
61	325	
62	325	एवं 326

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
63	325	
64	325	एवं भाग 2 पृ. 231 में भी है।
65	326	
66	326	
67	326	
68	327	
69	327	
70	327	
71	327	
72	327	
73	331	
74	331	
75	331	
76	332	
77	332	
78	332	
79	332	
80	332	
81	332	
82	332	
83	351	
84	352	
85	353	
86	353	
87	353	
88	356	
89	356	
90	392	
91	392	
92	393	
93	421	
94	421	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
95	423	
96	425	
97	425	
98	438	
99	440	
100	441	
101	441	
102	441	
103	488	
104	488	
105	488	
106	488	
107	491	
108	492	
109	492	
110	493	
111	493	
112	496	एवं भाग 2 पृ. 503 में भी है ।
113	502 एवं 780	एवं भाग 6 पृ. 747 में भी है ।
114	502	एवं भाग 6 पृ. 747 में भी है ।
115	506	एवं 803
116	507	
117	507	
118	507	
119	518	
120	518	
121	518	
122	525	
123	526	
124	526	
125	528	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
126	533	
127	541	
128	542	
129	542	
130	542	
131	542	
132	543	
133	544	
134	545	
135	545	
136	545	
137	571	एवं भाग 5 पृ. 382 में भी है।
138	571	
139	574	
140	574	
141	574	
142	574	
143	575	
144	575	
145	575	
146	581	
147	585	
148	594	
149	594	
150	594	
151	597	
152	597	
153	597	एवं भाग 6 पृ. 1154 में भी है।
154	597	
155	597	
156	598	
157	598	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
158	598	
159	598	
160	598	
161	598	
162	598	
163	607	
164	608	
165	610	भाग 3 पृ. 334 में भी है।
166	675	
167	675	
168	677,678,679	
169	679	
170	679	
171	684	
172	691	
173	691	
174	696	
175	699	
176	706	
177	706	
178	706	
179	706	
180	706	
181	706	
182	706	
183	709	
184	753	
185	754	
186	762	
187	772	
188	772	
189	772	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
190	773	
191	777,784	
192	777,784	
193	778	
194	780	
195	780	
196	780	
197	780	
198	781	
199	784	
200	795	
201	803	
202	803	
203	804	
204	806	
205	806	
206	819	
207	819	
208	835	
209	835	
210	836	
211	840	
212	840	
213	840	
214	840	
215	844	
216	844	
217	844	
218	844	
219	844	एवं भाग 2 पृ. 178 में भी है ।
220	845	
221	850	

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	भाग-1
222	850	
223	867	एवं भाग 4 पृ. 2682 में भी है ।
224	872	
225	872	
226	872	
227	873	
228	873	एवं भाग 7 पृ. 1004 एवं 1165 मे भी है।
229	873	
230	873	
231	873	
232	874	
233	874	
234	874	
235	874	
236	874	
237	875	
238	875	
239	875	
240	875	
241	875	
242	878, 879	
243	878, 879	
244	878	
245	878	
246	879	
247	882	एवं भाग 4 पृ. 2457 में भी है ।
248	884	
249	884	
250	887	एवं भाग 2 पृ. 549 में भी है ।
251	887	एवं भाग 7 पृ. 647 में भी है ।




चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका

अन्तकृद्दशा सूत्र

सूक्ति क्रम	वर्ग
1	3
2	4
3	4

अभिधान चिन्तामणि एवं कामन्दकीय नीतिसार

सूक्ति क्रम	अध्ययन	श्लोक	
38	2	210–211	एवं कामन्दकीय नीतिसार 4/21

अन्ययोग व्यवच्छेदिका

सूक्ति क्रम	श्लोक	चरण
95	5	प्रथम–द्वितीय

अष्टक प्रकरण

सूक्ति क्रम	अष्टक	श्लोक
37	3	6
247	16	5

आचारांग सूत्र

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुतस्कंध	अध्ययन	उद्देशक	सूत्र	गाथा	चरण
32	1	1	7	56	–	–
184	1	2	2	29	–	–
7	1	2	3	–	–	–
160	1	2	4	85	–	–
18	1	3	2	115	7	तृतीय
157	1	3	3	123	10	प्रथम–द्वितीय
156	1	3	3	123	10	तृतीय–चतुर्थ
155	1	4	1	133	–	–
35	1	5	4	165	–	–
151	1	9	2	67	–	चतुर्थ

सूक्तिक्रम	द्वितीय श्रुत	चूलिका	अध्ययन	सूत्र	-
238	2	3	15	778	-
127	2	3	15	784	-

आगमीय सूक्तावली

सूक्ति क्रम	पृष्ठ	सूक्तानि
103	19	23 (113)
104	19	23 (113)
145	72	(76-2-10)

आप्तमीमांसा

सूक्ति क्रम	श्लोक
97	59-60

ऋग्वेद पुरुष सूक्त

सूक्ति क्रम	श्लोक
197	10/90/2

उत्तराध्ययन सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा	चरण
22	2	15	चतुर्थ
185	2	17	तृतीय-चतुर्थ
13	2	26	प्रथम-द्वितीय
11	2	26	तृतीय-चतुर्थ
189	2	30	तृतीय-चतुर्थ
187	2	33	प्रथम-द्वितीय
206	4	1	प्रथम
207	4	1	द्वितीय
204	11	6	पूरी गाथा
205	11	9	तृतीय-चतुर्थ
57	20	11	चतुर्थ
58	20	12	तृतीय-चतुर्थ
60	20	36	पूरी गाथा
64	20	37	प्रथम-द्वितीय
59	20	37	तृतीय-चतुर्थ
61	20	38	चतुर्थ

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा	चरण
63	20	39	पूरी गाथा
62	20	40	पूरी गाथा
65	20	42	तृतीय-चतुर्थ
66	20	44	पूरी गाथा
67	20	45	पूरी गाथा
69	20	47	पूरी गाथा
68	20	48	प्रथम-द्वितीय
71	20	50	तृतीय-चतुर्थ
70	20	51	तृतीय-चतुर्थ
72	20	52	तृतीय-चतुर्थ
149	29	32	गद्य आलापक
150	29	32	गद्य आलापक
148	29	32	गद्य आलापक
31	29	50	गद्य आलापक
30	29	50	गद्य आलापक
56	30	5-6	गद्य आलापक
55	30	6	तृतीय-चतुर्थ
44	35	3	तृतीय-चतुर्थ
45	35	4	पूरी गाथा
46	35	7	पूरी गाथा
48	35	13	तृतीय
49	35	15	तृतीय
47	35	17	तृतीय-चतुर्थ
51	35	18	पूरी गाथा
50	35	19	पूरी गाथा
52	35	21	पूरी गाथा

उत्तराध्ययन निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	अध्ययन	
12	2	सटीक
105	3	सटीक
106	3	सटीक

ओघ निर्युक्ति (भाष्य सह)

सूक्ति क्रम	गाथा	चरण
89	7	प्रथम
88	7	तृतीय चतुर्थ

कल्प सुबोधिका टीका

सूक्ति क्रम	क्षण
183	1
186	7

कुलक संग्रह

सूक्ति क्रम	गाथा	
172	8	गुणानुराग कुलक

छान्दोग्य उपनिषद्

सूक्ति क्रम	अ०	श्लोक	चरण
244	8	-	प्रथम चरण
245	8	-	पूरा श्लोक

गच्छाचार पइण्णय [प्रकीर्णक] टीका

सूक्ति क्रम	अधिकार	श्लोक
176	2	-

चाणक्य नीति

सूक्ति क्रम	अध्याय	सूत्र
29	8	7

तत्त्वार्थ सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्याय	सूत्र
225	7	8

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य

सूक्ति क्रम	अध्याय	श्लोक	
165	10	7	एवं स्याद्वाद मंजरी पृ. 329

तित्थोगाली पइण्णय [प्रकीर्णक]

सूक्ति क्रम	गाथा
143	1201
43	1207
100	870
101	871
102	872

दशवैकालिक सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	उद्देशक	गाथा	चरण	सूत्र
154	8	–	16	तृतीय	–
152	9	1	17	द्वितीय	–
14	10	–	11	चतुर्थ	–
202	1	–	–	सटीक	–

दशवैकालिक निर्युक्ति

सूक्ति क्रम	गाथा
9	209
117	262
116	264
118	265
137	301

द्वात्रिंशत् - द्वात्रिंशिका सटीक

सूक्ति क्रम	श्लोक
84	1

धर्मबिन्दु सटीक

सूक्ति क्रम	अध्याय	सूत्र	श्लोक
23	1	43	—
214	2	49	[107]
25	1	43	33
26	1	43	34
27	1	43	35
28	1	43	36

धर्मरत्न प्रकरण सटीक

सूक्ति क्रम	श्लोक
181	51
180	53
179	54
178	55
177	56

धर्मसंग्रह सटीक

सूक्ति क्रम	अधिकार	पृष्ठ
24	1	8
213	1	–
212	1	20
211	1	20
190	2	59
4	2	71
39	2	75
73	3	–
173	2	–

नलचम्पू

सूक्ति क्रम	अध्याय	श्लोक
208	3	15

निशीथ भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
144	2794
146	2847
83	6243

निशीथ भाष्य एवं बृहत्कल्प भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा	
142	2790	निशीथ भाष्य एवं
	2711	बृहत्कल्प भाष्य

प्रश्न व्याकरण सूत्र

सूक्ति क्रम	आस्त्रव द्वार	अध्ययन	सूत्र
199	1	2	5
192	1	2	5
191	1	2	5
193	1	2	6
198	1	2	6
124	1	3	9
125	1	3	11
126	1	3	12
123	1	3	12
166	1	4	13
167	1	4	13
168	1	4	15
169	1	4	16
170	1	4	16
194	1	–	–
	संवर द्वार		
224	2	6	21
226	2	6	21
227	2	6	22
229	2	6	22
234	2	6	22
235	2	6	22
236	2	6	22
232	2	6	22
233	2	6	23
237	2	6	23
239	2	6	23
240	2	6	23
241	2	6	23
136	2	8	26

सूक्ति क्रम	संवर द्वार	अध्ययन	सूत्र
135	2	8	26
133	2	8	26
134	2	8	26
132	2	8	26
131	2	8	26
128	2	8	26
129	2	8	26
130	2	8	26
230	1	–	सटीक
228	1	–	सटीक

पद्म पुराण

सूक्ति क्रम		अ.	श्लोक
19	5	19	252 एवं हारिभद्रीयाष्टक 4/6

पञ्चसंग्रह सटीक

सूक्ति क्रम		श्लोक	
188	–	4	द्वार

पञ्चतन्त्र

सूक्ति क्रम	अ.	श्लोक
201	2	124
115	2	124

[illegible]

सूक्ति क्रम		श्लोक
209	–	28
223		131
219	–	152

प्रवचनसारोद्धार

सूक्ति क्रम	द्वार
112	67

पिण्ड निर्युक्ति वृत्ति

सूक्ति क्रम		
250	–	–

ब्रह्मबिन्दूपनिषद्

सूक्ति क्रम	श्लोक
196	12

बृहत्कल्प सूत्र (बारसा सूत्र)

सूक्ति क्रम	सूत्र	पृष्ठ
248	60	151
249	59	151

बृहत्कल्प भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा	चरण
86	245	
85	247	
87	249	
139	2712	प्रथम
140	2711	
141	2712	द्वितीय

बृहदावश्यक भाष्य

सूक्ति क्रम	गाथा
174	4441
175	4464
5	4584
6	4585
53	5108

भगवती सूत्र

सूक्ति क्रम	शतक	उद्देशक	सूत्र
119	1	3	7(1)
120	1	9	28
40	7	1	16(2)
41	13	9	26

[illegible]

सूक्तिक्रम	अध्याय	श्लोक
121	1	16
113	2	23
114	2	24

महानिशीथ सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा	चरण
15	6	144	प्रथम-द्वितीय
17	6	148	तृतीय-चतुर्थ
16	6	150	पूरी गाथा

योगबिन्दु

सूक्ति क्रम	श्लोक
163	181
164	188
34	358

योगदृष्टि समुच्चय

सूक्ति क्रम	श्लोक
20	117 एवं मनुस्मृति 4/226

योगशास्त्र

सूक्ति क्रम	प्रकाश	गाथा
74	4	58
75	4	59
76	4	60
215	4	61
216	4	62
217	4	63
218	4	64
221	4	72
222	4	73

व्यवहार भाष्य पीठिका

सूक्ति क्रम	अध्ययन	गाथा
147	7	215
21	-	76
153	-	77

विक्रमचरित्र

सूक्ति क्रम	सर्ग	प्रकरण
210	1	1
8	1	3
182	7	95

सन्मति तर्क प्रकरण

सूक्ति क्रम	काण्ड	श्लोक
98	3	60
99	3	63

सुभाषित श्लोक संग्रह

सूक्ति क्रम	श्लोक
195	406

सूत्रकृतांग सूत्र सटीक

सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा	चरण
107	1	1	2	6	तृतीय-चतुर्थ
109	1	1	2	17	तृतीय-चतुर्थ
108	1	1	2	19	प्रथम-द्वितीय
110	1	1	2	22	पूरी गाथा
111	1	1	2	23	पूरी गाथा
243	1	1	4	9	तृतीय-चतुर्थ
242	1	1	4	10	पूरी गाथा
78	1	2	1	6	तृतीय-चतुर्थ
81	1	2	1	7	तृतीय-चतुर्थ
77	1	2	1	9	पूरी गाथा
80	1	2	1	10	प्रथम द्वितीय
79	1	2	1	10	तृतीय-चतुर्थ
82	1	2	1	11	तृतीय
138	1	2	2	19	तृतीय-चतुर्थ
122	1	2	3	11	प्रथम
94	1	2	3	14	द्वितीय
33	1	6	-	26	प्रथम द्वितीय
171	1	8	-	22	पूरी गाथा
220	1	8	-	-	पूरी गाथा
10	1	10	-	16	तृतीय-चतुर्थ
231	1	11	-	-	सटीक एवं प्रश्न व्याकरण सटीक 1 संवर द्वार

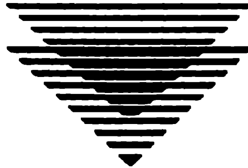
सूक्ति क्रम	प्रथम श्रुत.	अध्ययन	उद्देशक	गाथा	चरण
36	1	12	–	11	चतुर्थ
93	1	15	–	11	प्रथम
54	1	15	–	12	प्रथम-द्वितीय
42	2	2	–	38	गद्य आलापक
251	–	1	2	1	
246	–	2	2	–	

स्थानांग सूत्र

सूक्ति क्रम	अध्ययन	स्थान (ठाणा)	उद्देशक	सूत्र
203	4	4	3	326
200	6	6	–	527
161	8	8	–	649
162	8	8	–	649
159	8	8	–	649
158	8	8	–	649

ज्ञानसाराष्टक

सूक्ति	अष्टक	श्लोक
91	26	2
90	26	3
92	26	5



पञ्चम परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त संदर्भ-ग्रंथ सूची

5

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

क्रमांक "सूक्ति-सुधारस" में प्रयुक्त जैन तथा अन्य ग्रन्थ

1. अन्तकृद्दशा सूत्र –
2. अभिधान चिन्तामणि (कोष) – हेमचन्द्राचार्य – व्याख्याकार – हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी
3. अन्ययोग व्यवच्छेदिका – हेमचन्द्राचार्य
4. अष्टक प्रकरण – श्री हरिभद्र सूरि, श्री महावीर जैन विद्यालय, गोवालिया, टैंक रोड, बम्बई, प्रथम आवृत्ति, सन् 1940
5. आचारांग सूत्र – पंचम गणधर सुधर्मास्वामी, सम्पादक – मुनि जम्बूविजय, श्री महावीर जैन विद्यालय, वम्बई-400036 प्रथम संस्करण, ई सन् 1977
6. आचारांग सूत्र (शीलांक वृत्ति) प्रकाशक – आगमोदय समिति, सूरत
7. आगमीय सूक्तावलि –
8. आप्तमीमांसा (देवागम) – स्वामी समन्तभद्राचार्य, हिन्दी टीकाकार – पं० जयचन्द्रजी, मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला समिति, कालबादेवी रोड, बम्बई, प्रथम आवृत्ति ।
9. उत्तराध्ययन सूत्र –
10. उत्तराध्ययन-निर्युक्ति –
11. ओघनिर्युक्ति – आचार्य भद्रबाहु स्वामी (द्रोणाचार्यवृत्ति), आचार्य विजयदानसूरि जैन ग्रन्थमाला ।
12. कल्प सुबोधिका टीका
13. कामन्दकीय नीतिसार –
14. कुलक संग्रह – पूर्वाचार्य विरचित; प्रका. गूर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, गांधी रस्ता अहमदाबाद (गुज.)
15. गच्छाचार पइण्णय टीका –
16. चाणक्यनीति (चाण्क्यशास्त्र)
17. छान्दोग्योपनिषद् – गीताप्रेस, गोरखपुर ।
18. तत्त्वार्थ सूत्र – आचार्य उमास्वाति, विवे. पं. सुखलालजी संघवी, सम्पा. – पं. कृष्णचन्द्र जैनागम दर्शनशास्त्री, एवं पं.

दलसुखमालवणिया, श्रीमोहनलाल दीपचन्द चोकसी, जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दि स्मारक ट्रस्ट बोर्ड, बम्बई - 3, प्रथम संस्करण, 1996 ।
19. तत्त्वार्थाधिगमभाष्य — स्वोपज्ञवृत्ति सहित
20. तित्थोगाली पइण्णय —
21. दशवैकालिक निर्युक्ति भाष्य —
22. दशवैकालिक सूत्र — श्री शय्यंभवसूरि,
23. द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका — आचार्य सिद्धसेन
24. धर्मबिन्दु - आचार्य हरिभद्र - श्री मुनिचन्द्र सूरि रचित टीका, टीकानुसारी-हिंदी भाषान्तर, सार्वजनिक पुस्तकालय, नागजीभूधरकी पोल-अहमदाबाद
25. धर्मरत्नप्रकरण सटीक —
26. धर्मसंग्रह सटीक —
27. निशीथ भाष्य
28. प्रश्न व्याकरण सूत्र - (पण्हावागरणं) —
29. पञ्चसंग्रह सटीक
30. पद्म पुराण —
31. पञ्चतन्त्र —
32. पिंड निर्युक्ति
33. बृहदावश्यक भाष्य —
34. बृहत्कल्प सूत्र —
35. बृहत्कल्प भाष्य —
36. भगवती सूत्र - पंचमगणधर सुधर्मास्वामी
37. भगवद्गीता — गीताप्रेस, गोरखपुर ।
38. सुभाषित श्लोक संग्रह —
39. महानिशीथ सूत्र —
40. मनुस्मृति
41. योगबिन्दु — आचार्य हरिभद्र सूरि, सेठ ईश्वरदास मूलचंद, श्री जैनग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद, ई. सन् 1940
42. योगदृष्टि समुच्चय — आचार्य हरिभद्रसूरि, (देखिए श्री हरिभद्रसूरि ग्रन्थ संग्रह) ।
वाचस्पत्याभिधान (कोष)

43. विक्रम चरित्र –

44. व्यवहार भाष्य-पीठिका –

45. सन्मति तर्कप्रकरण – आचार्य सिद्धसेन दिवाकर - श्री अभयदेवसूरि प्रणीत तत्त्वबोध विधायिनी व्याख्या, श्री जैनग्रन्थ प्रकाशन सभा, भावनगर, विक्रम संवत् 1996 ।

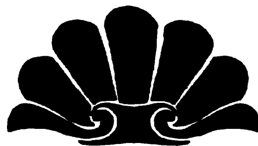
46. सूत्रकृतांग सूत्र – (श्रीमद् शीलांकाचार्य वृत्तियुक्तम्) – सम्पादक एवं संशोधक मुनि श्री जम्बूविजयजी, मोतीलाल - बनारसीदास, इण्डोलाजिक ट्रस्ट, बंगलारोड, जवाहरनगर, दिल्ली - 7 प्रथम संस्करण, सन् 1978

47. स्याद्वादमंजरी – (कारिका टीका सह) – हेमचन्द्राचार्य - अन्ययोग - व्यवच्छेदद्वात्रिंशिका स्तवन, टीका मल्लिषेण सूरि प्रणीता- सम्पा.–डॉ. जगदीशचन्द्र जैन, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास, तृतीय आवृत्ति, ई0 सन् 1970 ।

48. स्थानांग सूत्र – (ठाणांग) –

49. शास्त्रावार्ता समुच्चय

50. ज्ञानमाराष्टक – उपाध्याय यशोविजय, केशरबाई ज्ञानभंडार संस्थापक, संघवी नगीनदास करमचन्द, प्रथम आवृत्ति, विक्रम सं. 1994 ।




विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

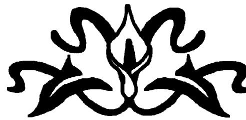
विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
अमरकोष (मूल)
अघट कुँवर चौपाई
अष्टाध्यायी
अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
उपदेशमाला (भाषोपदेश)
उपधानविधि
उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
एक सौ आठ बोल का थोकड़ा
कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
कमलप्रभा शुद्ध रहस्य
कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
करणकाम धेनुसारिणी
कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
काव्यप्रकाशमूल
कुवलयानन्दकारिका
केसरिया स्तवन
खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
गतिषष्ठ्या - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्राषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
दववदनमाला
घनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टाह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्तृहरिशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।



लोकोपकारी की महत्वपूर्ण कृतियाँ

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति–सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति–सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति–सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति–सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति–सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति–सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. **'विश्वपूज्य'** : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि: जीवन–सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा–कुसुम (दशम खण्ड)

१३. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१४. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१५. सुगन्धित–सुमन(FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :
श्री मदनराजजी जैन
द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,
पो. भीनमाल–३४३०२९
जिला–जालोर (राजस्थान)
☎ (02969) 20132